VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६४, ३-४ जून-जुलाई –2015

# विश्वज्योति

## भक्ति विशेषांक

भाग-2

## विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : २५ रुपये

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य ( डॉ. ) विश्वबन्धु

सम्पादक:
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
( सञ्चालक )

आदरी सह-सम्पादक :
प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. ( श्रीमती ) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. ( सुश्री ) रेणू कपिला
पटियाला

## शुल्क की दरें

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| आजीवन ( भारत में ) | : | १२०० रु. | आजीवन ( विदेश में ) | : | ३०० डालर |
| वार्षिक ( भारत में ) | : | १०० रु. | वार्षिक ( विदेश में ) | : | ३० डालर |
| सामान्य अङ्क ( भारत में ) | : | १० रु. | सामान्य अङ्क ( विदेश में ) | : | ३ डालर |
| विशेषाङ्क ( एक भाग भारत में ) | : | २५ रु. | विशेषाङ्क ( एक भाग विदेश में ) | : | ६ डालर |

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 ( पंजाब, भारत )

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक ( निवास ) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

# विषय-सूची


| लेखक | विषय | विधा | पृष्ठांक |
|---|---|---|---|
| डॉ. गिर्राज किशोर | कबीर की भक्तिभावना | लेख | 2 |
| डॉ. सत्यव्रत वर्मा | भक्ति- 'शास्त्र' की उल्लेखनीय कृति नारदभक्तिसूत्र | लेख | 3 |
| डॉ. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा | वैदिक भक्तियोग | लेख | 8 |
| श्री प्रदीप जुगरान | श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति और भक्त | लेख | 11 |
| श्री देवनारायण भारद्वाज | भक्ति की अभिव्यक्ति प्रसन्नता या मुक्ति | लेख | 14 |
| डॉ. विद्यानन्द ब्रह्मचारी | संतकवि स्वामी रामतीर्थ की भक्ति-भावना | लेख | 17 |
| डॉ. महावीर प्रसाद | श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति-कर्म की प्रासंगिकता | लेख | 21 |
| डॉ. रेणु बाला | श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात में भक्ति का स्वरूप | लेख | 23 |
| डॉ. सुनीता कोहली | संतकवि दादू का भाव-भक्ति-पथ | लेख | 27 |
| डॉ. विशाल भारद्वाज | श्रीमद्भागवतपुराण में भक्ति-योग | लेख | 30 |
| डॉ. जयश्री राठौड़ | भक्ति और नवधा भक्ति | लेख | 33 |
| डॉ. शैलजा | भक्ति की महिमा | लेख | 39 |
| डॉ० करुणा अरोडा | श्रीमद्भगवद्गीता तथा भक्तियोग | लेख | 43 |
| प्रो. आलोक सी. वाघेला | श्रीमद्भगवद्गीता तथा भक्तियोग | लेख | 47 |
| डॉ० उमा जैन | सूरदास की नवधा भक्ति | लेख | 50 |

विषय-सूची


| | | | |
|---|---|---|---|
| डॉ० मोनिका | भक्ति का माहात्म्य | लेख | 54 |
| डॉ० चन्द्रभान अरोड़ा | श्रीमद्भागवतपुराण में भक्त और भक्ति का स्वरूप | लेख | 57 |
| डॉ० टेकचन्द मीणा | वैदिक वरुण देवता : भक्ति का मूल स्रोत | लेख | 61 |
| डॉ. सुनीला शर्मा | संत रविदास जी की भक्तिपद्धति | लेख | 65 |
| डॉ. दलबीर सिंह चाहल | भक्ति की प्राचीन अवधारणा तथा महत्त्व | लेख | 68 |
| श्री शम्मी कुमार | वेदों में वर्णित भक्ति-तत्त्व | लेख | 71 |
| कु. साक्षी | ज्ञान से भक्ति श्रेष्ठ | लेख | 74 |
| सुश्री योगिता शर्मा | भक्ति एवं भक्ति-भाव का आधार | लेख | 77 |
| श्री राजेश शर्मा | पौराणिक साहित्य में भक्ति का स्वरूप | लेख | 80 |
| श्री उमेश पौडेल | भानुभक्त की रामभक्ति | लेख | 83 |
| श्री नरेन्द्र कुमार | श्रीगुरुरविदास विजय महाकाव्य में वर्णित गुरुरविदास की साधना-भक्ति | लेख | 88 |
| कुमारी शारदा देवी | उपनिषदों में भक्ति | लेख | 91 |
| | संस्थान-समाचार | | 93 |
| | विविध-समाचार | | 95 |
| | पुण्य-पृष्ठ | | 99-144 |

# सम्पादकीय–

विश्वज्योति के वर्ष 2015 के विशेषाङ्क के लिए परामर्शक मण्डल द्वारा भक्ति अंक प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। वह इसलिए कि भक्ति एक ऐसी अनिर्वचनीय मानसिक एवं बौद्धिक भावना या धारणा है, जो किसी भी प्राणी के हृदय में किसी भी दृश्य या अदृश्य वस्तु के प्रति ऐसी इच्छा पैदा करती है, जिसके कारण वह प्रतिक्षण उसके विषय में चिन्तन करता हुआ उसकी प्राप्ति या सान्निध्य के लिए केवल प्रयत्नशील ही नहीं होता अपितु तन्मय भी हो जाता है। उसके सिवाय उसको और कुछ नहीं दिखाई देता। ऐसी लगन जब भगवान् या किसी देवता या देश के या स्वामी या किसी वस्तु के प्रति हो जाय तब उसको तद्विषयक भक्ति कहा जा सकता है। उदाहरणत: भगवान् के प्रति भक्ति भगवद्-भक्ति, देश- भक्ति, मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, स्वामी-भक्ति, गुरु-भक्ति, इत्यादि अनेक प्रकार की भक्ति कहीा जाती है। भक्त की विशेषता ही यह है कि उसकी जिसके प्रति ऐसी धारणा बन जाय उसके लिए अपने जीवन का सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहता है। उसकी प्राप्ति या सनिध्य के लिए उस के लिए न कोई स्थान अगम्य है, न कोई कार्य असाध्य, उसके हृदय में अपने आराध्य के प्रति यही निश्चय होता है कि वह अपना जीवन ही उसके लिए समर्पित कर दे। यही कारण था कि भक्त मीरा अपने प्रिय हरि के भरोंसे पर जहर का प्याला भी पी गई थी।

जब हम ईश्वर-भक्ति की ओर विचार करते हैं तो किसी भी भक्त का उस परमपिता परमात्मा के प्रति मन-बुद्धि तथा अन्तरात्मा का समर्पण ही ईश्वर-भक्ति कही जा सकती है। एक प्रकार से किसी के लिए श्रद्धापूर्वक अनन्य प्रेम ही भक्ति कही जा सकती है। जब किसी भी भक्त की भगवान् के प्रति इस प्रकार की भक्ति हो जाय तब भगवान् भी उस के योग और क्षेम का पूर्ण ध्यान रखते हैं, यह बात स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कही भी है। भगवान् के प्रति यह भक्ति, उनके चरित सम्बन्धी कथाओं के श्रवण उनके नाम का जप, उसके पाद-सेवन, सन्तों के सत्संग तथा सांसारिक सुखों की त्याग इत्यादि अनेक प्रकार से प्रकट की जाती है। इस प्रकार के भक्तों तथा भक्त-कवियों के विषय में वैदिक-काल से लेकर आज तक बहुत बड़ा साहित्य भरा पड़ा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने तो गीता के 12वें अध्याय में स्पष्ट ही कर दिया है कि भक्त का क्या लक्षण है तथा वास्तविक भक्त कैसा होता है और ऐसे भक्त की भावना ही सच्ची भक्ति कही जा सकती है। विद्वान् लेखकों तथा विदुषियों ने इसी दिशा में प्रयास करते हुए अपने विचारों को लेखनी बद्ध करके विश्वज्योति में प्रकाशन भेजा है। विश्वज्योति के दोनों अंको के लिए विद्वानों द्वारा जहाँ अनेक प्रकार के लेख भेजे गए, वहाँ एक बात जरूर देखी गई कि श्री रसखान, श्री धरमदास, श्री यारी साहिब, श्री रैदास, भक्त नामदेव, गुलालसाहेब, श्रीधरनीदास, श्री दरिया साहिब श्रीचरणदास,श्री भीरवा साहब जैसे अनेक भक्त कवियों की ओर लेखकों का ध्यान नहीं गया, भले ही उन्होंने बहुत बड़े ग्रन्थों की रचना नहीं की पर भक्त होने के नाते, अपनी भावना को जिस रूप से प्रकट

शेष पेंज नं. 94

# विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६४ } होश्यारपुर, ज्येष्ठ-आषाढ़ २०७२; जून-जुलाई २०१५ { संख्या ३-४

**येन हस्ती वर्चसा संबभूव,**
**येन राजा मनुष्येष्वप्स्वन्तः।**
**येन देवा देवतामग्र आयन्,**
**तेन मामद्य वर्चसाऽग्ने वर्चस्विनं कुरु॥**

(अथर्व. 3.22.3)

(येन) जिस (वर्चसा ) तेज से (हस्ती) हाथी (स्वभावतः) (संबभूव) युक्त होता है। जिस (तेज) से मनुष्यों में राजा (स्वभावतः युक्त होता है) और (अप्सु) जलों में राजा वरुण (स्वभावतः युक्त होता है) जिस (तेज) से (देवाः) देवता (अग्रे) पहले (देवतां) देवताओं की पदवी को (आयन्) प्राप्त हुए। (अग्ने) हे अग्निदेव ! (माम्) अब मुझे (तेन) उसी (वर्चसा) तेज से (युक्त कर) (वर्चस्विनं) तेजस्वी (कुरु) बनाओ।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

# कबीर की भक्तिभावना

– डॉ. गिर्राज किशोर

श्रद्धा और प्रेम के मिश्रित भाव को भक्ति कहा गया हैं। तात्पर्य यह है कि भक्ति में प्रेम-भाव होना आवश्यक हैं। कबीर ने प्रेम की प्रशंसा की है और प्रेम को पुस्तकीय ज्ञान से अप्राप्य बताया है-

**पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा,**
**पंडित भया न कोई।**
**ढाई आखर प्रेम का,**
**पढ़ै सो पंडित होई।।**

कबीर ने प्रेम को भी ज्ञान के समान ही कष्ट-साध्य बताया है। ईश्वर से प्रेम करना अर्थात् भक्ति-भावना का निर्वाह सरल कार्य नहीं हैं। जो अपना अहंकार समाप्त कर लेता है, वही प्रेम कर सकता है। अहंकार को समाप्त करना अपना शीश अपने हाथ से काट कर धरती पर रखना है-

**यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नांहि।**
**सींस उतारे भुई धरै सौ पैठे यहि माँहि।।**

कबीर ने निष्काम-भक्ति की प्रशंसा की हैं-

**जब लगि भगति सकामता तब लगि निरफल सेव।**
**कह कबीर कैसे मिले निहकामी निज देव।।**

भक्ति में नम्रता होना पहली शर्त है। भक्ति तभी संभव होती है जब भक्त अपने इष्टदेव को सबसे महान् और स्वयं को सबसे निम्न मान लेता है। कबीर ने नम्रता की उच्च सीमा को स्पर्श करते हुये अपने-आपको अपने इष्टदेव का कुत्ता कहा है। कुत्ता निम्रता एवं लघुता की परम सीमा होने के साथ निष्ठा और वफादारी में सबसे ऊपर है-

**कबिरा कूता राम का मुतिया मेरा नावँ।**
**गले राम की जेबरी जित खैचे तित जावँ।।**

कबीर की भक्ति में नम्रता की कोई कमी नहीं है-

**बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय।**
**जो मन देखा आपना मुझसे बुरा न कोय।।**

जिज्ञासा, बी-24, विक्रम कालोनी, रामघाट रोड, अलीगढ़।

गतांक से आगे

# भक्ति- 'शास्त्र' की उल्लेखनीय कृति नारदभक्तिसूत्र

– डॉ. सत्यव्रत वर्मा

सद्गुरु तथा सत्पुरुष का सान्निध्य जहां भक्तिमार्ग को प्रशस्त करता है, वहां कुसंगति उसके लिये घातक है। अत: भक्तिमार्ग के पथिक के लिये दु:संग पूर्णतया त्याज्य है। उसे केवल दुर्जनों की संगति से ही नहीं बल्कि उन वस्तुओं और स्थानों से भी सावधानी-पूर्वक बचना चाहिए जो अन्त: करण में भोग-वासना उत्पन्न करते हैं तथा निम्नगामी बनाते हैं। विषय-भोग में रत असत्पुरुषों की जो संगति करते हैं तथा उनके पगचिह्नों पर चलते हैं, उनके सद्गुणों का क्षय होता है और उन्हें नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। ऐसे 'शिश्नोदरपरायण' लोगों का संग विपत्ति का घर है- सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीड़ा-मृगेषु च (भागवत, ३/३१/३४)। उनसे दूर रहने में ही जिज्ञासु की भलाई है- दु:सङ्ग: सर्वथैव त्याज्य: (४३)। कुसंगति वस्तुत: सर्वनाश का कारण है। उससे वे समूची दुर्वृत्तियाँ उद्दीप्त हो जाती हैं, जो मन को विषय-लोलुप बना कर पतन के गर्त में धकेल देती हैं- बुद्धिनाशात प्रणश्यति्। काम, क्रोध, मोह आदि वृत्तियाँ पहले भले ही हृदय में 'तिल' के समान सूक्ष्म रूप में हों, असत्पुरुषों की संगति के प्रभाव से वे 'ताड़' का रूप धारण कर लेती हैं। बुद्बुद उत्ताल तरंगे बन जाते हैं।

इष्ट के प्रति एकनिष्ठ भक्ति प्राप्त करना सब साधनाओं का लक्ष्य है। उसके बाधक तत्त्वों का उन्मूलन करना अनिवार्य है। माया सब से बड़ा अवरोध है। यह माया अथवा अविद्या नाना रूपों में प्रकट होती है। इसके कारण ही सत् असत् प्रतीत होता और असत् सत् के समान। चित्त की शुद्धि के बिना अज्ञान से मुक्त होना सम्भव नहीं है। विषयासक्ति के त्याग, सत्पुरुषों की सेवा तथा सांसारिक पदार्थों में ममत्वभाव के परित्याग से चित्त स्फटिकवत् निर्मल हो जाता है। तब माया उसे वशीभूत नहीं कर सकती (४६)। नारद के अनुसार एकान्त-चिन्तन तथा उससे उत्पन्न सांसारिक सम्बन्धों एवं भोगों से विरक्ति, माया से छुटकारा पाने का एक अन्य प्रभावी उपाय है। निर्जन स्थान में ईश्वर-चिन्तन करने से ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की प्राप्ति होती है। इन उदात्त

भावों के प्रबल होने से लौकिक सम्बन्ध तथा अन्य विषय क्रमशः शिथिल होकर नष्ट हो जाते हैं। सत्त्व, रजस्, तमस्-ये तीन गुण जीव के सांसारिक बन्धन के मुख्य कारण हैं। इन्हीं से ससांर की सृष्टि होती है। इनसे ऊपर उठकर ही संसार के आकर्षण-बन्धन को जीता जा सकता है- निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। वासना के समाप्त होने पर संग्रह और संरक्षण की वृत्ति व्याकुल नहीं करती। उसकी व्यवस्था तब स्वयं परमेश्वर करता है- तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्, गीता, ९/२२। (४७)। निर्द्वन्द्व भाव की प्राप्ति माया के साथ युद्ध में ढाल का काम देती है। फल की कामना से किया गया कर्म बन्धन का कारण है। समस्त चेष्टाओं, कर्मों तथा फलों को ईश्वर को अर्पण करने से (कुरुष्व मदर्पणम्) साधक बन्धन से लिप्त नहीं होता- लिप्यते न स पापैः पत्रमिवाम्भसा। निष्काम भाव से कर्म करते-करते एक ऐसी अवस्था आती है जब कर्म करने की प्रवृत्ति नहीं होती। कर्तृत्व का अभिमान नष्ट होने पर किसी के प्रति आसक्ति अथवा द्वेष नहीं रहता। अहंबोध के नष्ट हो जाने से लाभ-हानि, जय-पराजय, सुख-दुःख आदि द्वन्द्व उसे विचलित नहीं करते। भक्तिभाव के प्रबल होने पर वेद-विहित विधि-निषेध आदि भी छूट जाते हैं और साधक सर्वात्मना प्रभु-प्रेम की धारा में डूब जाता है। तब वह न केवल स्वयं माया से मुक्त हो जाता है बल्कि दूसरों का भी उद्धार करता है- स तरति स तरति स लोकांस्तारयति (५०)।

सप्तम अनुवाक में नारद ने भक्ति के लक्षण का निरूपण किया है। ईश्वर प्रेम का ही दूसरा नाम भक्ति है। उस प्रेम के स्वरूप का शब्दों में बखान करना सम्भव नहीं है। प्रेम के मर्म को नपे-तुले शब्दों में व्यक्त करने की सामर्थ्य भाषा में नहीं है। वह तो अनुभव की वस्तु है, गूंगे के गुड़ की तरह। वह जैसे गुड़ के स्वाद को जानता है, किन्तु शब्दों में उसे प्रकट नहीं कर सकता, वैसे ही प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है- अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपवत् (५१) मूकास्वादनवत् (५२) चित्त जब वासना से मुक्त होकर निर्मल होता है, तब अन्तःकरण में उस दिव्य प्रेम का प्रकाश होता है। साधना के सोपान की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचने पर प्रेमानुभूति होती है- प्रकाशते क्वापि पात्रे (५३)। प्रेम कहने-सुनने की बात नहीं है। उसका केवल अनुभव किया जा सकता है। वह अनूठा अनुभव है। वह इतना सूक्ष्म है कि वह बुद्धि की भी पकड़ में नहीं आता है। अन्य अनुभवों के विपरीत वह स्थायी है, उसकी अनुभूति अविच्छिन्न है। उसमें गुण-जन्य सुख-दुःख का उतार-चढ़ाव नहीं है। वहाँ परमानन्द की अखण्ड अनुभूति है।

प्रेम में कामना का स्थान नहीं है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता कदाचित् यह है कि उसके आनन्द में कभी कमी नहीं आती। जितना उसका आस्वादन किया जाए, आनन्द की मात्रा उतनी ही बढ़ती जाती है (५४)। जब भक्त ईश्वर के प्रेम में विभोर हो जाता है, तब उसके इन्द्रिय-मन-बुद्धि के समक्ष अन्य किसी विषय का अस्तित्व नहीं रहता। वह पूर्णतया प्रेममय ईश्वरमय हो जाता है। उसके लिये तब समूची सृष्टि प्रेम की प्रतिमा बन जाती है (५५)। भगवद्गीता में वर्णित आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी भक्तों के आधार पर तथा तीन प्रकार के गुणभेद के कारण गौणी भक्ति तीन प्रकार की मानी गयी है। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। इनमें बाद वाली की अपेक्षा पहली-पहली श्रेष्ठ है।

आठवें अध्याय में भक्ति के वैशिष्ट्य का निरूपण है। ज्ञान, कर्म आदि साधना के अन्य सब मार्गों की अपेक्षा भक्ति श्रेष्ठ ही नहीं है, वह उनकी अपेक्षा सहज भी है। मानव-हृदय का सहज भाव होने के नाते उस पर सबका अधिकार है। उसमें जातिगत अथवा कुलगत योग्यता की भी अपेक्षा नहीं है- अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ (५८)। भक्ति को अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह स्वयं प्रमाण रूप है। कर्म, ज्ञान या योग द्वारा साध्य को पाने के लिये साधक को गम्भीर प्रयास करना पड़ता है, किन्तु भक्ति के आविर्भाव की अनुभूति हृदय में सहज रूप से होती है। भक्ति स्वयं साध्य वस्तु है। भक्त की साधना उसी को लेकर आरम्भ होती है। इसीलिये भक्तिमार्ग में ईश्वर सुलभ होता है (५९)। शान्तिरूप और परमानन्द स्वरूप होने के कारण भी भक्ति अन्य साधना के मार्गों की अपेक्षा सहज और सरल है। भक्त का एकमात्र आराध्य ईश्वर है, जिसे वह अपना सर्वस्व अर्पित कर देता है। अत: हानि-लाभ, दु:ख-सुख के झंझावात में वह निश्चिन्त तथा अकम्पित रहता है (६०)। जब तक भक्ति की सिद्धि नहीं होती अर्थात् ईश्वर को आत्मार्पण करना जब तक सहज न हो जाए, तब तक लोकव्यवहार का पालन करना अनिवार्य है किन्तु उसके फल की कामना त्याज्य है। कर्मफल के त्याग का अभ्यास भक्त को निरन्तर करते रहना चाहिये (६२)। साधना के विरोधी विषयों से बचना साधक के लिये अत्यन्त आवश्यक है। स्त्री, धन, नास्तिक तथा वैरी पुरुषों की संगति तो क्या, उनकी चर्चा भी वर्जनीय है। उससे चित्त में विक्षेप तथा विकार पैदा होते हैं, जो साधक को लक्ष्य से भ्रष्ट कर देते हैं। स्त्री-संग तो क्लेश और बन्धन का सबसे बड़ा कारण है। बाहरी बाधाओं की अपेक्षा भीतरी बाधाएँ अधिक कष्टप्रद हैं। अहंकार, दम्भ, काम, क्रोध आदि ऐसी मानसिक वृतियां हैं, जिनके

रहते साधना कभी परिपक्व नहीं हो सकती (६४)। मन, प्राण तथा इन्द्रियवृत्तियों को इष्ट की सेवा में लिप्त रखने से भोग की प्रवृत्ति स्वयं शान्त हो जाती है और समस्त कर्म ईश्वर को अर्पित करने से कर्तृत्व का अभिमान समाप्त हो जाता है। तीन गुणों के बन्धन तथा आर्त आदि भावों से ऊपर उठ कर दास्यभाव तथा मधुर भाव से प्रेम की साधना करना सार्थक है।

नौवें अनुवाक में भक्त की महिमा का गान है। भक्त के बिना भगवान् भी अधूरा है। जो मन-प्राण आदि की समस्त वृत्तियों को ईश्वरोन्मुखी कर तन्मयता से अविराम ईश्वर भजन करते हैं और सब कुछ उसके चरणों में समर्पण कर देते हैं जिसके फलस्वरूप उनके हृदय में पराभक्ति का प्रकाश होता है, वे नारद के अनुसार, ऐकान्तिक/श्रेष्ठ भक्त हैं। उनमें सांसारिकता की गन्धमात्र भी नहीं होती। उनके लिये मुक्ति का भी कोई महत्त्व नहीं है। उनका एकमात्र साध्य भक्ति है (भक्ता एकान्तिनो मुख्या: ६७)। ऐसे भक्त ईश्वर-प्रेम की मादकता में ऐसे विभोर हो जाते हैं कि आपस में ईश्वर की चर्चा, जप, कीर्तन करते समय उनका कण्ठ रुंध जाता हैं, शरीर रोमांच से भर जाता है और आँखों से प्रेमाश्रुओं की अविरल धारा बहने लगती है। उन भक्तशिरोमणियों के जन्म से कुल ही नहीं, पृथ्वी भी धन्य हो जाती है। (६८)। उन लोकपावन ईश्वरनिष्ठ भक्तों के हृदय में श्रीहरि साक्षात् निवास करते हैं। उनके सान्निध्य मात्र से स्थान गौरवान्वित हो जाता है (हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरि:, भाग, ९/९/६)। वे जिस तीर्थ-स्थल में पदार्पण करते हैं, वह उनकी चरणधूलि से पवित्र हो जाता है, जो कर्म करते हैं, वह सत्कर्म बन जाता है और जिस शास्त्र का स्पर्श करते हैं वह प्रमाणभूत शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यह इसलिये होता है कि वे भक्तगण सदा भगवद्भाव में लीन रहते हैं– तन्मया: (७०)। ऐसे पवित्रात्मा भक्त जनों के आविर्भाव से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं। उनके माता-पिता तथा पितर और देवता लोग आनन्द से झूम उठते हैं, पृथिवी कृतकृत्य हो जाती है। लौकिक भावनाओं को छोड़ कर वे केवल ईश्वर-निष्ठ होते हैं (यतस्तदीया:, ७३), अत: उनमें जाति, कुल, विद्या के आधार पर कृत्रिम भेद नहीं होते।

नारदभक्तिसूत्र के अन्तिम (दसवें) अध्याय में भक्ति के साधनों पर विचार किया गया है। भारतीय परम्परा में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिये श्रद्धा को प्रमुख साधन माना गया है। तर्क, युक्ति, वितण्डा से उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती । तर्क के द्वारा मन की चंचलता बढ़ती है जिससे सन्देह-संशय को बल मिलता है। प्रवचन-उपदेश भी उसके लिये उपयोगी नहीं हैं। श्रुति ने निर्भ्रान्त शब्दों में उनका निषेध किया है– नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य:, नैषा

तर्केण मतिरपनेया। अतः भक्ति की अट्टालिका तक पहुँचने का एकमात्र सोपान श्रद्धा है। तर्क-युक्ति वहाँ निरर्थक है (वादो नावलम्बय:-७४)। तर्क-वितर्क का बड़ा दोष यह है कि इससे नाना विरोधी मत प्रकट होते हैं जो संघर्ष को जन्म देते हैं और उस बौद्धिक संघर्ष से प्राप्त निष्कर्ष अनिश्चित तथा सन्दिग्ध होते हैं- बाहुल्यावकाशत्वाद् अनियतत्वाच्च (७५)। किन्तु तर्क के निषेध का यह अर्थ नहीं कि शास्त्राध्ययन भी त्याज्य है। स्वाध्याय साधना का विशिष्ट अंग है जिसे शास्त्र में 'तप' की संज्ञा दी गयी है। भक्तिमार्ग के साधक के लिये उससे सम्बन्धित शास्त्रों का अध्ययन-अनुशीलन अत्यन्त उपयोगी है। सत्संगति, भजन-कीर्तन, जप-मनन आदि सात्त्विक कर्म भी भक्ति को प्रगाढता प्रदान करते हैं (७६)। साधक को उन्हें भी अवश्य करना चाहिये। भक्ति के परिपक्व होने पर जब विषय-वासना का उच्छेद हो जाता है और सुख-दुःख भी भक्त को विचलित नहीं करते, तो उसे एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिए। पराभक्ति की प्राप्ति तक वह समूचा समय ईश्वर के स्मरण-चिन्तन में बिताए। अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिक्य आदि जिन्हें भगवद्गीता में दैवी-सम्पद् कहा गया है, उनका भी तत्परता से पालन करना उसके लिये अनिवार्य है। इन भक्ति के प्रयोजनीय तथा संवर्धक कर्मों को करने तथा भगवान् की सर्वतोभावेन आराधना करने से वह यथाशीघ्र आविर्भूत होता है और साधक जनों को उसके प्रकाश का तत्काल अनुभव होता है (८०)। भक्ति यद्यपि एक है किन्तु भक्त की प्रीति/आसक्ति के सम्बन्ध से वह ग्यारह प्रकार हो जाती है। पञ्चधा तथा नवधा भक्ति से आगे बढ़ कर नारद ने उसके ग्यारह भेद किये हैं।

नारदभक्तिसूत्र में भक्ति के स्वरूप तथा उससे सम्बन्धित साधन, फल, भेद, लक्षण आदि विषयों का जो प्रतिपादन किया गया है, वह नारद के अनुसार, प्राचीन मान्य आचार्यों की मान्यताओं के अनुरूप है- इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमता:.....भक्त्याचार्या: (८३)'।

**7/34,पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास,**
**श्रीगंगानगर - 335 001**

---

1. निबन्ध में भक्तिसूत्रों का प्रस्तुत विमर्श बहुधा श्री रामकृष्ण परमहंस के प्रवचनों का अनुगामी है।

# वैदिक भक्तियोग

– डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा

वैदिक भक्ति, ईश्वर के विभिन्न स्वरूपों के प्रति की गई स्तुतियों और अपने कल्याणार्थ भक्तों द्वारा ईश्वर के प्रति ही की गई प्रार्थनाओं का योग है। ईश्वर को वैदिक मन्त्रों में सृष्टि का व्यवस्थापक, शासक, राजा, दण्डप्रदाता, जीवों को उनके कर्मानुसार फल देने वाला, न्यायकर्त्ता, स्वामी, पिता, माता, बन्धु और सखा आदि सभी रूपों में स्तोताओं द्वारा स्वीकार किया गया है। ईश्वर के इन स्वरूपों की स्तुति स्तोताओं द्वारा वैदिक मन्त्रों में निम्न प्रकार से की गई है। नियमों को धारण करते हुए, शुभ कर्म करने वाले, वरणीय प्रभु, अपनी समस्त प्रजाओं के भीतर राज्य करने के लिए बैठे हुए हैं (ऋ. १.२५.१०)। जो मनुष्य खड़ा है या चलता है अथवा दूसरे लोगों से ठगी करता है या छिपकर काम करता है अथवा दूसरे लोगों को धमकाता है या जो लोग छिपकर मंत्रणा (साजिश) करते हैं, इन सब के कार्यों पर राजा रूपी ईश्वर नजर रखता है (अथर्व. ४.१६.२)। दंड से बचने के लिए, यदि कोई जीव सृष्टि के किसी भी कोने में जाकर छिपना चाहे, वह ईश्वर की दृष्टि से बच नहीं सकता। ईश्वर के दूत ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विचर रहे हैं और सब पर नजर रखे हुए हैं (अथर्व. ४.१६.४)।

विलक्षण शक्ति के स्वामी परमेश्वर ही सच्चे शासक हैं। शेष सभी लौकिक राजा लोग तो नाममात्र के शासक हैं। ईश्वर जिस ऐश्वर्य रूपी सरस्वती को मेघ के रूप में प्रवाहित करते हैं, उसी का छोटा-सा अंश दान के रूप में इन लौकिक राजाओं को भी प्राप्त हो जाता है (ऋ. ८.२१.१८)।

सम्पूर्ण सृष्टि, (1) अचर, जड़ भूमि, पर्वत आदि की सृष्टि (2) प्राणवाली वृक्ष, वनस्पति आदि, (3) चतुष्पाद-चार पैरों वाली पशु आदि की सृष्टि और (4) द्विपद-मानव की सृष्टि। इन सब का शासक ईश्वर ही है (यजु. २३.३)। जो पैदा हो चुका है और जो अभी पैदा होने वाला है, उन सबका अधिष्ठाता वही एक ईश्वर है (अथर्व. २३.४.१)। जो सभी भूतों का अधिपति और सभी लोकों का स्वामी है तथा जो स्वयं भी महान् है, वही इस महान् संसार का ईश्वर है (यजु. २०.३२) जो व्यक्ति दूसरों को सुख देते हैं, धार्मिक नियमों

का पालन करते हैं, वे कभी भी नष्ट नहीं होते। पर दूसरों को जो दु:ख पहुँचाते हैं, वे दु:खी होते हैं (ऋ. १.१२५.७)। दानी व्यक्ति को ईश्वर सदा शुभ फल प्रदान करते हैं (ऋ. १.१.६)।

न्यायकारी ईश्वर हमारे लिए कल्याणकारी हों (यजु. ३६.९) स्वार्थी व्यक्ति की सम्पत्ति को ईश्वर नष्ट कर देते हैं (ऋ. २.१२.५) छली और शोषक व्यक्ति को ईश्वर अपनी माया द्वारा नष्ट कर देते हैं। जो बुद्धिमान् व्यक्ति इस रहस्य को समझता है, वह ईश्वर द्वारा उन्नति को प्राप्त करता है (ऋ. १.११.७)। ईश्वर पापी व्यक्ति पर भी दया करते हैं पर फिर भी हमें सदा पाप से बचना चाहिए, ताकि हम ईश्वर की दृष्टि में ऊँचा उठ सकें (ऋ. ७.८७.७)। दयावान् प्रभु नग्न को वस्त्रों द्वारा ढक देते हैं, बीमार व्यक्ति की व्यथा का हरण कर लेते हैं, अन्धे व्यक्ति के दृष्टि दे देते हैं तथा लंगड़े व्यक्ति को चलने की शक्ति दे देते हैं (ऋ. ८.७९.२) ईश्वर हमारी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं तथा हमारी रक्षा करने वाले हैं (ऋ. ६.४५.१६.)। चर एवं अचर जगत् के एकमात्र स्वामी ईश्वर ही हैं। हम उन्हें अपनी रक्षा के लिए पुकारते हैं (यजु. २५.१८)। प्रभु इन्द्र लोकों के स्वामी हैं और अपनी शक्ति से संसार पर शासन करने वाले हैं (ऋ.१.११.८)। ईश्वर ही हमारे एकमात्र स्वामी हैं। हमारे सभी कार्य ईश्वर के लिए ही समर्पित हैं। ईश्वर हमें किसी दूसरे निन्दक, बकवादी और अदानी की सेवा में न भेजें (ऋ. ७.३१.५७)। हे ईश्वर आप की कृपा से ही हम अपने प्रतिस्पर्धियों का सामना कर सकते हैं। आप हमारे हैं और हम तुम्हारे हैं (ऋ. ८.९२.३२)। हे प्रभु ! मैं कहीं भी रहूँ, आप मुझे कुछ न कुछ धन देते ही रहते हैं। आपके अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है। आप ही मेरे पिता हैं (ऋ. ७.३२.१९)। हे परमात्मा ! आप ही हमारे माता और पिता हैं। आपसे ही हम आनन्द की प्राप्त के लिए इच्छा रखते हैं (ऋ. ८.९८.११)। हे ईश्वर ! आप ही हम मनुष्यों को भवसागर से तारने वाले माता-पिता हो। आप ही जानने-योग्य हैं (ऋ. ६.१.५)। परमात्मा ही हमारे बन्धु, जनक तथा पालन-कर्त्ता हैं। आप ही समस्त लोकों के ज्ञाता हैं। अपने कर्मानुसार जीव आप में ही विचरण करते हैं (यजु. ३२.१०)। हे प्रभु ! आप ही हमारे बन्धु, सम्बन्धी, मित्र तथा सखा हैं। अतः आप ही हमारी स्तुतियों के योग्य हो (ऋ. १.७५.४)।

हे ईश्वर ! आप ही अद्‌भुत मित्र हैं। हिंसारहित कर्मों तथा यज्ञों में आपका शुभ रूप प्रकट होता है। आपकी ही शरण में हम स्तोता रहें। आपकी निकटता में रहने से कभी भी किसी का विनाश नहीं होता (अथर्व. १.९४.१३)। धैर्यवान् प्रभु इस महान् संसार पर राज्य कर रहे हैं। संसार की रक्षा के लिए उनकी भुजाएँ सब ओर फैली हुई हैं (ऋ. ४.५३.४)। परमात्मा सर्व-समर्थ हैं। वे ही

स्तोता को अश्व, अन्न, वीर पुत्र, कर्त्तव्य-परायणा पत्नी, आदि सभी से सम्पन्न कर देते हैं (ऋ. १०.८०.१)। ईश्वर सहस्रों प्रकार से स्तोताओं को विभिन्न दान प्रदान करते हैं (ऋ. १.११.८)। हे प्रभु ! आप सुन्दरता के स्रोत हैं। आपसे सौन्दर्य और सौभाग्य की धारायें ऐसे ही निकल कर फैलती हैं जैसे वृक्ष से शाखाएँ। प्रभु ही स्तोता को धन, बल, ज्योति आदि प्रदान करते हैं (ऋ. ६.१३.१)।

हे ईश्वर ! हम सदा श्रद्धा और भक्तिभावना के साथ आपके चरणों में विराजमान रहें (ऋ. १.१.७)।

इस प्रकार, स्तोताओं द्वारा ईश्वर के विभिन्न स्वरूपों की स्तुति करने के पश्चात् उनसे अपने कल्याणार्थ विभिन्न प्रकार की प्रार्थनाएँ भी वैदिक मन्त्रों में की गई हैं, जो कि निम्न प्रकार से हैं।

हे अनेक भक्तों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए प्रभो! हम तेरे ही हैं, तुम्हारा ही सहारा लेकर हम यहां पर चल रहे हैं। हे स्वामी! आपके अतिरिक्त हमारी बात सुनने वाला यहां पर कोई नहीं है। एकमात्र आप ही पृथ्वी के समान धैर्य धारण करने वाले हमारी बात को सुनने वाले हैं। अतः मैं आपको ही पुकार रहा हूँ। आप ही मुझ दीन की प्रार्थना सुनो (ऋ. १.५७.४)।

हे प्रभो! आप सर्व-व्यापक हैं, कल्याणकारी हैं। अतः आप हमारी अभीष्ट-सिद्धि और पूर्ण सन्तुष्टि के लिए कल्याणकारी बनो। हमारे ऊपर सभी ओर से सुख की वर्षा करो (यजु. ३६.१२)। हे कल्याणकारी प्रभो! आप हमारी आयु की रक्षा करें। आप हमें अन्न और बल प्रदान करें। हमारी दु:ख, लोभ आदि बाधाओं को दूर करें (ऋ. ९.६६.१९,२१)।

हे अग्ने! हम धन-सम्पत्ति आदि के सम्पादन में आपकी कृपा से सुपथ पर ही चलें। इस सम्बन्ध में हम छल-कपट आदि का सहारा ग्रहण न करें। सभी प्रकार की हमारी पापमयी वृत्ति को दूर कर दो। आपके चरणों में रहते हुए हम सदा सुपथ को ही अपनाएँ। सत्पथ पर चलते हुए ही हमें धन-सम्पदा आदि प्राप्त हो (यजु. ४०.१६)।

हे भक्तों द्वारा पुकारे जाने वाले प्रभो ! हमें सभी प्रकार के द्वेष-भावों से मुक्त कर दो ताकि हम कल्याणकारी नाव पर सवार होकर इस भवसागर से पार हो जाएँ (ऋ. ८.१६.११)

**साधु आश्रम, होश्यारपुर।**

---

सन्दर्भ ग्रन्थ - डॉ. मुन्शीराम शर्मा-भक्ति का विकास, चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी-१९७९

# श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति और भक्त

– श्री प्रदीप जुगरान

वेद, शास्त्र, महात्मा, गुरुजनों तथा परमेश्वर के वचनों में प्रत्यक्ष रूप से विश्वास करना ही श्रद्धा है। 'श्रद्धा' भक्ति का पूरक है। एक विश्वास के साथ अपने ज्येष्ठजनों, गुरूजनों तथा श्रेष्ठ मूल्यों को ग्रहण कर ही मनुष्य को आदर्श स्थिति प्राप्त होती है। श्रीमद्भगवद्गीता न केवल भारतीय अपितु वैश्विक पटल पर एक ऐसा आदर्श ग्रन्थ है, जो जीवन की प्रत्येक अवस्था तथा जीवन के अनुत्तरित प्रश्नों का व्यावहारिक आदर्श रूप स्थापित करती है। गीता न केवल भारतीय मनीषियों अपितु पाश्चात्य विचारकों के लिए एक मूलग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। भक्ति, ज्ञान, कर्म, संन्यास आदि का ऐसा व्यावहारिक विवेचन अन्य किसी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता। सभी शास्त्रों की कुंजी रूप में गीता प्रसिद्ध है। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद के रूप में राजनीति, समाज, व्यक्ति के करणीय अकरणीय कर्मों की व्याख्या श्रेष्ठतापूर्वक प्रदर्शित है।

विचारकों द्वारा गीता में सामाजिक हित के लिए विश्लेषणपरक व्याख्या ने आदर्श जीवन को कला के रूप में प्रतिष्ठित किया है। महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द आदि श्रेष्ठजनों ने इसे अपने जीवन का मूलाधार माना है। भगवद्गीता के विषय में श्रीवेदव्यास जी ने कहा है कि अन्य शास्त्रज्ञान से श्रेष्ठ गीता है:-

**गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।**
**या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।**[1]

श्रीकृष्ण स्वयं अर्जुन से कहते हैं कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।[2] इस ग्रन्थ में भक्ति-भक्त के सम्बन्ध में व्यावहारिक विवेचन दिया गया है जिससे अकर्तव्यता का भाव स्वयं ही लुप्त हो जाता है। सम्पूर्ण देवत्व का समाहार तथा मूल एक परममूर्ति श्रीहरि को माना गया है। गीता में आया है कि चाहे किसी भी देवता का पूजन करो उसको फलीभूत श्रीहरि ही करते हैं। सभी कर्म स्वाभाविक रूप से उन्हीं को समर्पित रहते है।[3]

1. महाभारत 6/43/1   2. भगवदगीता-9/31   3. वही-7/21

वर्तमान परिपेक्ष्य में भी देखा गया है कि किसी भी पत्थर, वृक्ष अथवा जड़-चेतन को लोग पूजना आरम्भ करते हैं और उसका फल भी प्राप्त करते हैं। वस्तुतः महत्व उस वृक्ष, पत्थर अथवा जड-चेतन का नहीं वरन् मनुष्य के आन्तरिक विश्वास का है जो फलीभूत होता है। जैसा कहा भी गया है '**विश्वासो हि फलदायकम्**'। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी आस्था या विश्वास की महिमा के विषय में कहा गया है कि तीर्थ, देवता, गुरु, मन्त्र तथा औषधि में जिसकी जैसी श्रद्धा होती है उसको उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है।[4]

भगवद्गीता में भक्ति सम्बन्धी श्रेष्ठ विवेचन दिया गया है। सगुण-निर्गुण का श्रेष्ठ समाधान इसमें प्राप्त होता है। वह परम शक्ति सगुण साकार है और वही निर्गुण निराकार है। इसके अनुसार दोनों प्रकार के भक्त ही श्रीहरि को प्रिय हैं, लेकिन भक्त होना आवश्यक है। भक्त वह होता है जो मुझे सन्मुख रख कर प्रत्येक कार्य करता है अर्थात् मदर्पण भाव से कार्य करे, किसी भी प्रकार से उसके फल के प्रति जिसकी आसक्ति न हो।[5] अतः जो भी करें परम शक्ति को समर्पित करें। भाव ऐसा हो कि मैं तो कुछ नहीं कर रहा हूँ जो कुछ हो रहा है श्रीहरि ही करवा रहे हैं। कर्मण्य-अकर्मण्य जो भी है सब उनका है तथा उनको ही समर्पित है। कृष्ण कहते हैं कि जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं मैं भी है उनको उसी प्रकार भजता हूँ।[6]

उस परमात्मा को पिता मानो या माता, भ्राता मानो या सखा, प्रेमी मानो या गुरु वह तत्सम्बन्धी भाव में साथ रहता है। स्वार्थ को त्यागकर, परमेश्वर को ही अपना आश्रय और परमगति समझकर, निष्काम प्रेमभाव से, पतिव्रता स्त्री की भांति-मन, वाणी और अपने कर्मों के द्वारा श्रेष्ठ कार्यों को सम्पादित करना एक भक्त का लक्षण है। परहित, प्रेम, दया, दान का समत्व भक्ति का केन्द्रीय भाव है। श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि न कोई मेरा अप्रिय है न प्रिय, सभी मेरे लिये समान हैं। उसकी आस्था व आन्तरिक भाव उसे तत्सम्बन्धी फल देते हैं। नवधा भक्ति तो इसके बाहरी तत्व हैं जो भक्तिधारा को विस्तार देते हैं लेकिन उससे पहले आदर्श भक्त बनना आवश्यक है। जहाँ तक भक्ति का विभाजन है। यत्र-तत्र भक्ति के विषय में नवधा भक्ति को श्रेय देते हुए, भगवान् के चरित्र का श्रवण मनन, भगवान् के नाम का स्मरण, नित्य-प्रति अनन्य भाव से उसकी सेवा, पूजा वन्दना दास्यभाव से या सख्यभाव से उपासना ये नौ प्रकार माने गये हैं।[7]

कृष्ण स्वयं कहते हैं कि जो कोई भक्त प्रेम से जो कुछ समर्पित करता है उसे मैं सगुण

---

4. ब्रह्मवैवर्त पुराण, 39/126 5. भगवदगीता, 11/55 6. वही, 4/11
7. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 7/5/23

रूप से प्रकट होकर ग्रहण करता हूँ।[8]

भक्त सम्बन्धी विवेचन में वे कहते हैं कि जिसका जैसा विश्वास है उसके लिये मैं वैसा ही प्रस्तुत होता हूँ। जो शान्तचिन्त भक्त हर्ष-वैमनस्य से रहित, सभी जीवों के प्रति शान्तचित्त हों वे मुझे प्रिय हैं। भक्त कौन प्रिय हैं। भक्त के विषय में स्पष्ट रूप से भगवान् कृष्ण ने स्वयं ही गीता में कहा कि किस प्रकार का भक्त मुझे प्रिय है।[9]

वस्तुतः अद्वेषी, स्वार्थहीन, प्रेमी, दयालु, अहंकाररहित, समत्वभावयुक्त, क्षमाशील, संतुष्ट, मन-इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए तथा दृढ निश्चयी- इस प्रकार के भक्त श्रेष्ठ होते हैं। आकांक्षा से हीन, शोक, द्वेष-कामना रहित, शत्रु-मित्र, मान-अपमान, सुख-दुःख, निन्दा-स्तुति सभी में समत्व को प्राप्त सन्तुष्ट, पक्षपातरहित भक्त ही श्रेष्ठ हैं। श्रीहरि स्वयं कहते हैं कि जो भक्त निष्काम भाव से मेरा चिन्तन मनन करते हैं वे श्रेष्ठता को प्राप्त होते हैं।

अतः भक्त को चाहिए कि आसक्तिरहित होकर कर्मशील रहे। कर्मफल को परमात्मा को समर्पित करते हुए अपना कार्य करता रहे। इस प्रकार का भक्त कभी भी दोष आदि से लिप्त नहीं होता है और निष्प होकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।[10]

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता रूपी ज्ञानगंगा में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा वैश्विक प्रत्येक समस्या का समाधान प्रस्तुत है। आवश्यकता है तत्सम्बन्धी विचारों पर चिन्तन-मनन करने की और उससे भी बड़ी आवश्यकता है जन-मानस के बीच इसकी बौद्धिकता प्रचारित करने की। ज्ञान, भक्ति, कर्म का उत्कृष्ट समाहार इसकी श्रेष्ठता को प्रदर्शित करते हैं। भक्ति और भक्त का परिरूप मनुष्य के विश्वास को दृढ करने में समर्थ है, जिसका अभिप्राय कर्मकाण्डिक आस्था मात्र नहीं है। वस्तुतः भक्ति तो एक विश्वास का नाम है जो सगुण-निर्गुण, बौद्धिक-आध्यात्मिक सभी रूपों में विद्यमान है।

**हिन्दी विभाग, हे.न.ब.ग. ( केन्द्रीय ) विश्वविद्यालय**
**श्रीनगर ( गढ़वाल ), उत्तराखण्ड।**

---

8. भगवद्‌गीता, 9/26
9. वही, 12/13,14
10. वही, 5/10

# भक्ति की अभिव्यक्ति प्रसन्नता या मुक्ति

– श्री देवनारायण भारद्वाज

'भक्ति'-भज सेवायाम् अर्थात् भजन करना, सेवा उपकार करना-यह संभव होता है- उपासना से अर्थात् समीप आसन लगाने या बैठ जाने से जैसे अग्नि के निकट बैठने पर उसका तापगुण प्राप्त होता है, मनुष्य उष्णता अनुभव करता है। लोहा तो अग्नि की भाँति ही लाल और गर्म हो भी जाता है। इसके भी तीन आयाम हैं :- 1. 'स्तुति' - ईश्वर का गुण कीर्तन श्रवण और ज्ञान होना, इसका फल ईश्वर के प्रति प्रीति में प्रकट होता है। 2. 'प्रार्थना'- अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होता हैं, उनके लिए ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है। 3. 'उपासना' – जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक, अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहलाती है, इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि हैं। इस क्रम से की गयी ईश्वर की भक्ति से जो शक्ति प्राप्त होती है, उसकी अभिव्यक्ति प्रसन्नता में होती है। मन्त्रद्रष्टा ऋषि आत्रेय ने इसके लिए एक क्रम का अनुशीलन किया है। यथा

**ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः।**
**पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र।।**

(सामवेद 455)

आचार्य पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार ने इस मन्त्र के द्वारा अपने जीवन को स्नेह व व्रतों के बन्धन वाला बनाने का सन्देश दिया है। जिसे मैं स्वचिन्तनधारा के रूप में प्रस्तुत करता हूँ। इसमें मानव जीवन के पांच सोपान इंगित किये गये हैं यथा 1. ऊर्जा (शारीरिक शक्ति), 2. मित्र (प्रिय प्राण प्रगति), 3. वरुण (जल की भाँति सरस वरणीय व्रत धारणा), 4. इडा (वेद वाणियों के समान सटीक चिन्तन), 5. इषम् (इषे-इच्छायाम्-अन्तिम अभिलाषा-प्रसन्नता) इन्हीं को आध्यात्मिक भाषा में - अन्नमय कोश, प्राणमयकोश,मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश और आनन्दमयकोश की संज्ञा से विहित किया जाता है। इन पंचकोशों के संचरण से मानव को पंचरत्न प्राप्त होते हैं क्रमशः- ऊर्जा, उत्साह, उत्सुकता,उत्कर्ष और उल्लास अर्थात् प्रसन्नता। पगपग पर प्राप्त होने

वाली प्रसन्नताओं का संघात ही मुक्ति का प्रभात बन जाता है। विशिष्टरूपेण उल्लासमय व्यक्तित्व निर्माण के लिए ऋषि 'विरूप आंगिरस' से पूछते हैं तो वे बोल पड़ते हैं :-

**ऊर्जा नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम्।**
**अस्मिन् यज्ञे स्वधरे।।**

हम उस प्रभु का स्मरण करें जो हमारी शक्तियों को क्षीण नहीं होने देते, उन्नतिपथ पर आगे ले चलते हैं व पवित्र ज्ञान दीप्ति प्राप्त कराते हैं (सामवेद 1712)। महर्षि दयानन्द ने भी यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में आये 'इषे व ऊर्जे' का तात्पर्य अन्नादि उत्तम पदार्थों व विज्ञान की इच्छा, तथा पराक्रम अर्थात् उत्तम रस बताया है। विस्तीर्ण सरोवर के समीप देशाटन के लिए बहुत सारे व्यक्ति उपस्थित थे, उनमें से एक दम्पती का नन्हा शिशु खेलते खेलते सरोवर में गिर गया। माता-पिता व अन्य कोई तैरना नहीं जानते थे, वे दोनों सहायता के लिए पुकारने लगे, कोई आगे नहीं बढ़ा, वहाँ पर एक बलशाली तैराक युवक भी था, किन्तु वह भी बच्चे को बचाने के लिए तैयार नहीं हुआ, तब धोखे से एक वृद्ध ने उसे पानी में धक्का दे दिया। लोगों ने उसे प्रेरणा दी- तुम पानी में पहुँच ही गये हो तो बच्चे को बचाकर ले आओ। उसने वृद्ध की बात मानी और वह बच्चे को उठाकर ऊपर ले तो आया, माता-पिता बच्चे को पाकर प्रसन्न हुए, किन्तु उस युवक ने शोर मचाकर पूँछना प्रारम्भ कर दिया- ''मुझे सरोवर में किसने धक्का दिया, बताओ मैं उसे देख लूँगा।'' उसे अपनी इस शारीरिक ऊर्जा एवं कार्य की उपलब्धि से कोई उत्साह नहीं मिला। वह ऊर्जा ही क्या, जिससे उत्साह का सृजन न हो। सड़क के किनारे-किनारे एक वृद्ध चले जा रहे थे। ठीक उनके पास ही बस रुकी और उस बस में से उनसे भी अधिक वृद्ध व्यक्ति उतरते हुए गिरते गिरते बचा, क्योंकि उसने पद-यात्री वृद्ध की बाँह पकड़ ली थी। बसयात्री वृद्ध गिरने से बच गया। पदयात्री वृद्ध को अपनी किंचित् शेष बची शक्ति व अपनी बाँह पर गर्व हुआ, जिससे वह वृद्ध बच सका। उसकी अल्प ऊर्जा ही सही, किन्तु उसके उत्साह का कारण बन गयी। यही नहीं वह जब-जब इस घटना को याद करता तो उत्साह से भर जाता।

यही उल्लास सभी छोटे-बड़ों की उत्सुकता का उत्स बन जाता है। वर्तमान में विश्वस्तरीय सर्वोच्च वैज्ञानिक स्टीफन हाकिंस हैं। उनके शरीर का कोई अंग काम नहीं करता है, किन्तु उनका मस्तिष्क बिल्कुल विश्राम नहीं करता है। उनके जीवन का यही उत्साह है, जो नये नये अनुसंधानों के लिए प्रेरित करता रहता है। भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के शासन काल में दो भयंकर आपदायें देश में उत्पन्न हुईं। प्रथम-अन्न का अभाव और द्वितीय भारत पर पाकिस्तान द्वारा थोपा गया युद्ध। आचार्य

चाणक्य की भाँति इन दोनों आपदाओं के मूल कारण पर शास्त्री जी ने उत्सुकता पूर्ण अन्वेषण किया और उनका एक ही नारा 'जय जवान- जय किसान' देश को उत्कर्ष की ओर ले गया।

कोई भी व्यक्ति जीवन में भौतिक-सम्पदा चाहे कितनी ही अर्जित कर ले, किन्तु वह कुछ काल तक सुखाभास तो कर सकता है, किन्तु उसे उल्लास या आनन्द का वरदान तो दुर्लभ ही रहता है। पर सच्चरित्र व सदाचार का जीवन जीने वाला सामान्य निर्धन व्यक्ति अपने जीवन में उल्लास प्राप्त कर लेता है। किसी को राह दिखाकर, प्यासे को जल पिलाकर, भूखे को भोजन कराके, चिन्तातुर व्यक्ति दुःखी व्यक्ति से दो सान्त्वना के शब्दों को बोलकर आप उसे सुखी बनाते हैं और स्वयं आनन्दोल्लास के अधिकारी बन जाते हैं। एक-एक अंक जोड़कर अरबों की संख्या बन जाती हैं, उसी प्रकार इन्हीं छोटी-छोटी प्रसन्नता को जोड़कर आपको मोक्षानन्द का उल्लास प्राप्त हो जाता है। अपनी इन्हीं दैनन्दिन प्रसन्नताओं को संरक्षित रखने के लिए महर्षि दयानन्द ने सन्ध्योपासना में एक अद्‌भुत उपाय बताया है, वह है अपनी मनसापरिक्रमा करना अर्थात् सभी प्रत्यक्ष छहों दिशाओं पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीचे, ऊपर कहीं भी किसी से द्वेष न पालना, इसके स्थान पर प्रेम का प्रसार करना।

जीवन में लक्ष्य रखना और उसे प्राप्त करना अनुचित नहीं, किन्तु भौतिक लक्ष्यों से कहीं अधिक महान् उपयोगी पारमार्थिक लक्ष्य होना चाहिए। इसे प्राप्त करने के लिए अलग से कुछ साधना की जाये- यह आवश्यक नहीं। महर्षि दयानन्द के अनुसार तो दैनिक पंच महायज्ञों के परिपालन से ही यह संभव है। हम साधनों को जुटाने में साधना को भूल न जायें। भक्ति की ''अभिधा, लक्षणा-व्यंजना'' अभिव्यक्ति पथपार्श्व में भवन निर्माणार्थ रोड़ी तोड़ने वाले तीन श्रमिकों ने स्पष्ट कर दी। एक सन्त ने तीनों से क्रमशः एक ही प्रश्न किया- 'क्या कर रहे हो भाई?' पहले ने उत्तर दिया- ''देख नहीं रहे- इस गर्मी में पसीना-पसीना होकर मर रहा हूँ।'' दूसरे ने उत्तर दिया ''क्या कर रहा हूँ- बच्चों के लिए रोजी-रोटी जुटा रहा हूँ।'' तीसरे ने गर्वपूर्वक उत्तर दिया ''मैं यज्ञ-मन्दिर का निर्माण कर रहा हूँ'' जहाँ परितोष प्रसादी के लिए यजमान भक्त देवताओं की प्रदक्षिणा करने आयेंगे, जिससे मेरे पसीने की आहुति भी चढ़ती रहेगी। नित्यप्रति की यही प्रसन्नता ही तो भक्ति, मुक्ति व प्रभुशक्ति की स्रोत बनी रहती है।

**'वरेण्यम' अवन्तिका प्रथम, रामघाट मार्ग,**
**अलीगढ़- 202001 (उ.प्र.)**

# संतकवि स्वामी रामतीर्थ की भक्ति भावना

– डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी

भगवान् श्रीकृष्ण ने 'श्रीमद्भगवद्गीता' में स्पष्ट कहा है कि- बहुत जन्मों के बाद तत्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी पुरुष 'सब कुछ वासुदेव ही है'– इस प्रकार मुझको भजता है।[1]

इसी सन्दर्भ में पंचनद विमल भूमि के मध्ययुगीन निर्गुणोपासक संतकवि श्री गुरु नानक देव जी महाराज ने संतों की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है–

**संत की महिमा वेद न जाने।**
**जेता जाने तेता बखाने।।**

ऐसे सन्त-महात्माओं के चरित विचित्र होते हैं। उनमें बहुत-सी अलौकिक सत्य घटनाएँ रहती हैं, जिन पर सर्वसाधारण का कम विश्वास होता है। किन्तु कितनी विचित्र घटनाएं ऐसी भी होती हैं जिनको प्रत्यक्ष करने का सौभाग्य भी कतिपय भक्तों को प्राप्त हो जाता है।

अस्तु! पंजाब के एक जन्मजात प्रभु-प्रेमी, गणितज्ञ संतकवि, शाहों के शाह आधुनिक रामबादशाह त्यागमूर्ति स्वामी रामतीर्थ परमहंस हुए। स्वामी रामतीर्थ का पवित्र अवतरण दीपावली के दूसरे दिन बुधवार दिनांक २२-१०-१८७३ ई. को ग्राम मुरालीवाला, जिला गुजरानवाला अविभाजित पंजाब (अब पाकिस्तान) में एक अतिनिर्धन गोस्वामी कुल में हीरानन्द गोस्वामी के यहाँ हुआ। इनके बचपन का नाम 'तीर्थराम' रखा गया। इनके जन्म के बाद उनकी साध्वी स्वभाव की जननी नेहालदेई का स्वर्गवास हो गया, जैसे-तैसे शुक्ल पक्ष की चन्द्रकला की भाँति वह कमनीय बालक बढ़ने लगा। वैसे-वैसे ही उसकी शारीरिक कान्ति अलौकिक तेज से परिपूर्ण बढ़ने लगी थी। उसके मुँह पर असाधारण प्रतिभा प्रकट होती थी। ज्यों-ज्यों बालक के शरीर, रूप सौन्दर्य, विचार और बाल्योचित विनय बढ़ते गये, त्यों-त्यों तीन वर्ष की आयु में ही उनका मन्दिरों में ध्वनित शंखध्वनि से अगाध अनुराग हो गया। इस शंखध्वनि से उनका दृढ़ अनुराग इतना हो गया कि यदि वे फूट-फूट कर रोते भी होते तो शंख-ध्वनि सुनकर एकदम शान्त हो जाते।

इससे उनका पूर्वजन्म का उज्ज्वल संस्कार झलकता है। कहा भी जाता है कि वंश का इतिहास संस्कार की गरिमा में फलता और

1. गीता, 7.19

पनपता है, और फिर सदा अमर रहकर स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता है। परम भगवद्प्रेमी स्वामी रामतीर्थ जी के वंश का इतिहास भी ऐसा ही है।

मुरालीवाला ग्रामनिवासी वयोवृद्ध दम्पति श्रीमती गंगादेवी जी से स्वामी रामतीर्थ जी के संबंध में एक इन्टरव्यू के आधार तीर्थराम की भक्ति की झलक मिलती है। श्रीमती गंगादेवी जी का कहना था कि पं. हीरानन्द जी का कच्चा इकमंजिला मकान था, उसकी एक छोटी-सी अंधेरी कोठरी में बैठकर तीर्थराम भजन किया करते थे। वह दिन में पढ़ते और रात को अमृतवेला में ध्यान लगाते थे। श्रीमती गंगादेवी जी को उनके परिवार वालों ने बताया था कि तीर्थराम ने छत से एक डोरी लटका रखी थी, जिससे अपनी चोटी में बाँध कर भजन किया करते थे। [राम सन्देश (विशेषांक) वर्ष १५, अंक-११ नवम्बर, १९६६ ई. पृ. ४०]

'स्वामी रामतीर्थ केन्द्र' अम्बाला रोड़ सहारनपुर के संस्थापक अध्यक्ष परमश्रद्धेय डॉ. केदारनाथ प्रभाकर, डी. लिट्, द्वारा उर्दू भाषा में लिखित पुस्तक 'रामबादशाह' में उल्लेख है- 'गोसाईं हीरानन्द ने अपने पुत्र तीर्थराम को लगभग ६ वर्ष की आयु में पढ़ने के लिए मौलवी मोहम्मद अली के यहाँ सुपुर्द कर दिया था। तीर्थराम बचपन में ही पढ़ने में बहुत बुद्धिमान् और परिश्रमी था। हर समय पुस्तकें पढ़ने की रुचि थी। शाम को जब मदरसा बंद होता तो तीर्थराम वहाँ से सीधा धर्मशाला या भगत दवारे जाता जहाँ भाई मयान सिंह या कोई बाहर से आए हुए विद्वान् पंडित या संत-महात्मा कथा करते थे। प्रातः काल स्कूल आने से पहले शिवाला या मन्दिर होकर आया करता था। एक दिन तीर्थराम ने मौलवी साहब से विनम्र निवेदन किया- अल्लाह, साकी और जाम में फर्क क्यों है ? मौलवी साहब बड़े हैरान हुए कि ऐसा विवेकी और विद्यार्थी तो उन्होंने आज तक नहीं देखा। यही कारण था कि तीर्थराम ने पहले साल में पहली और दूसरी, दूसरे साल में तीसरी और चौथी और तीसरे साल में पाँचवी श्रेणी उत्तीर्ण कीं। इसी प्रकार उन्होंने थोड़े ही समय में विद्यालय, महाविद्यालय और पंजाब विश्वविद्यालय की विभिन्न परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। एम.ए. परीक्षा गणित विषय को लेकर (स्वर्णपदक) प्राप्त किया। तदनन्तर कुछ दिनों तक स्यालकोट में रहकर अमेरिकन हाई स्कूल में अध्यापन कार्य करने लगे। स्यालकोट में ९४ दिन अध्यापन कार्य करने के उपरान्त आप लाहौर स्थित फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज में गणितशास्त्र के प्रोफेसर पद पर आसीन हुए। पुनः सनातन धर्म सभा के मंत्री मनोनीत किये गये।

इन्हीं दिनों प्रो. तीर्थराम के अन्तःकरण में श्रीकृष्ण-प्रेम भक्ति का ज्वार बेसुमार हो उठा। अपने छात्रजीवन में उनकी वृत्ति, अन्तः करण की पवित्रता, आत्मिक विकास की ओर रहती थी। कहा जाता है कि भगवद्प्रेम की साधना भी एक अजीब नशा है। जहाँ एक बार लौ लगी

कि लगी। प्रेम की एक नन्हीं-सी चिनगारी हृदय में प्रवेश करते ही सब कुछ आत्मसात् कर लेती है। प्रेम से भक्ति प्राप्त होती है। प्रेम वास्तव में एक चिनगारी है जिससे विरह की बारूद धधक उठती है। प्रेम की सीमा जहाँ समाप्त होती है, वहीं से भक्ति प्रारम्भ होती है।

श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का स्मरण तीव्रता से होने लगा 'अहा! कैसे सुन्दर घन छाये हैं। यह रावी है या यमुना दौड़ी जा रही है?' बोलते-बोलते एक जगह बैठकर भक्त कवि जयदेव उस श्लोक को जोर से गाने लगे, जिसका भाव था- आसमान में वर्षा उड़ आयी है; वनभूमि तमाल के वृक्षों से श्यामवर्ण की हो गयी है; रात्रि भी होने लगी है; इसलिए हे राधा जी ! यह कृष्ण डर जायगा, उसे तुम घर ले जाओ। इस प्रकार स्मरणभाव से आते-आते आक्रन्दपूर्ण स्वर से और अश्रुपूर्ण नेत्रों से वे उस श्लोक को गा रहे थे। बाद में स्वर क्षीण होता गया और शान्त होकर भाव-निमग्न अवस्था में दो-तीन घण्टे बैठे रहे।

दैवयोग से इन्हीं दिनों लाहौर में राजा हरवंश की हवेली के परिसर में वृन्दावन से रासलीला वालों की मंडली आयी थी। हवेली में खास-खास व्यक्ति ही जाते थे। सनातनधर्म सभा के कार्यकर्ता के रूप में प्रो. तीर्थराम गोस्वामी भी कॉलेज से वापस आकर बड़े चाव से रासलीला देखने चले जाते थे।

कहा जाता है कि जिसकी जैसी लालसा और इच्छा होती है उसकी भावना के अनुसार उसको वैसे ही दर्शन मिल जाता है। स्वामी रामतीर्थ ने जीवन में यदि कुछ चाहा तो कृष्ण प्रेम और कुछ माँगा तो कृष्ण प्रेम।

होश्यारपुर (पंजाब) के एक प्रत्यक्षदर्शी वकील लाला अयोध्या प्रसाद जी ने प्रो. तीर्थराम के बारे में लिखा है कि- गोसाईं जी एकबार लाहौर में रामायण की कथा सुन रहे थे। थोड़ी देर बाद बालकों की भाँति रोने लगे। लोगों ने बहुत दिलासा दिया पर कोई फल न हुआ। कथा समाप्त होने पर वह कहते सुनाई देते थे "कृष्ण! मुझ पर दया कीजिये-यदि आप के दर्शन न हुए तो चुल्हे में जाय यह विद्या, खाक में जाय इज्जत और भाड़ में जाय यह शरीर।"

उन्हीं दिनों एक बार रावी नदी के किनारे अपने प्रियतम के ध्यान में मग्न बैठे थे। इतने में वनप्रिया (कोयल) की कूक सुनकर चौंक पड़े। कहने लगे, "अरी कोयल, तेरी ध्वनि में यह मधुरता कहाँ से आई ? क्या तूने उस बांसुरीवाले को देख लिया है ? सच बता, वह किस उपाय से और कब मिलेगा ? इत्यादि

जम्मू शहर निवासी प्रो. डॉ. गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' जी ने अपने आलेख "स्वामी राम के सहयोगी एक स्वामी के अनुभव" में उल्लेख है- सन् १९३४ में एक बार मैं लाहौर जाकर आर्यसमाज में ठहरा। तब प्रसंगवश मैने उनसे स्वामी रामतीर्थ के विषय में पूछा स्वामी जी ने स्वामी राम के बारे मे एक घटना सुनाई कि - एक बार मैं और रामतीर्थ दोनों लाहौर की गली में जा रहे थे। आगे चलकर

एक सूने मैदान में पहुँचे। एक जंगली गुलाब की झाड़ी में गुलाब पुष्प खिला था। स्वामी राम उसी में भगवान् श्रीकृष्ण की हँसी का रूप सौन्दर्य देखकर बड़े मस्त हो गए। इतने मस्त हुए कि उनके हृदय से एक बड़ी हूक निकली। हाय! कृष्ण! मुझे छोड़ कहाँ गए हो ? मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता यों कहते-कहते खूब रोए।

प्रो. तीर्थराम के संबंध में स्व. पं. माधवाचार्य जी ने "सच्चे संन्यासी स्वामी रामतीर्थ" में लिखा है कि "इनके गर्भ गृह में एक भयंकर काला नाग रहा करता था। वह बिल में से थोड़ा-सा मुँह चमकाता था। जब इनके भोजन का समय होता ये अपने इस परम प्रिय काले नाग के लिये एक बेला भर कर दूध ठण्डा करते। वह बिल से निकल पहले दूध पीता फिर मस्ती में अपना फण फैला देता। ये बड़े आनन्द के साथ अतीव निर्भय भाव से उसके फण पर हाथ फेरते हुए कहते – जैसा तू काला है वैसा ही मेरा परम प्रिय कृष्ण भी काला था। तुझे देख मुझे मेरे कृष्ण की स्मृति ताजी हो जाती है।

प्रो. तीर्थराम को लाहौर में १२ जुलाई, १९०० ई. को गुरुपूर्णिमा के पावन अवसर पर 'जीवितव्यास' की पदवी दी गई। १४ जुलाई, १९०० ई को रीडर पद से त्याग-पत्र देकर राम की खोज में हिमालय जाकर १ जनवरी, १९०१ ई को संन्यास धारण कर 'स्वामी रामतीर्थ' के नाम से विश्वविख्यात संन्यासी महात्मा के रूप में साधना की।

दिनांक २५ दिसम्बर से २७ दिसम्बर सन् १९०१ ई. को मथुरा में स्वामी राम के प्रिय शिष्य स्वामी शिवगुणाचार्य द्वारा स्थापित शान्ति आश्रम के रमणीय प्रांगण में बृहत् धर्म महोत्सव का आयोजन हुआ, जिसमें सभी धर्माम्बलम्बी संत-महात्मा आमन्त्रित थे। इस का सभापति स्वामी रामतीर्थ जी महाराज को मनोनीत किया गया। इस धर्म सम्मेलन में एक १८ वर्षीय व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि पं. सत्यनारायण कविरत्न ने स्वामी जी से आज्ञा पाकर श्रीकृष्ण भक्ति के दो सवैये अपने विशेष अन्दाज में पढ़े कि जिससे सभा में सन्नाटा छा गया। सन्त शिरोमणि श्री स्वामी रामतीर्थ जी महाराज काव्य पाठ सुनकर अपनी आध्यात्मिक मस्ती में झूमने लगे और कविरत्न जी को अभी और , अभी और कहते गये। वे ऐसे मग्न हुए कि अपना व्याख्यान सुनाना भूलकर श्रीकृष्ण-भक्ति कविता सुनने में ही मग्न हो गये। दिनांक २६ दिसम्बर को स्वामी जी का 'कृष्णलीला के रहस्य' विषय पर हृदयग्राही व्याख्यान हुआ था। तभी से उनको लोग 'व्रजभाषा भक्त, भक्तिरस रुचिर रसावन' समझने लगे थे।

**-रामतीर्थ कुंज, ग्राम व पो. राँकोडीह, वाया- कोशी कॉलेज, खगड़िया जिला - खगड़िया ( बिहार )।**

# श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति-कर्म की प्रासंगिकता

– डॉ. महावीर प्रसाद

श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञान की गंगा, समाज की एकता-शक्ति वेद और उपनिषदों का सार, भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी है। समस्त मानव-समाज गीता ज्ञान के समक्ष नतमस्तक है।

वह भक्ति, वह प्रेमरूपा भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठ है। भक्ति शब्द की व्युत्पति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है भजन अथवा स्मरण। मानव आनन्द प्राप्ति के लिए जीवनभर सदैव प्रयास करता है। सुख की प्राप्ति उसका ध्येय होता है। परन्तु संसार के सारे सुख और आनन्द के साधन क्षणभंगुर और विनाशी हैं इसलिए उसके जीवन में आनन्द चिरकाल तक नहीं रहता परन्तु भगवान् की भक्ति से उसके मन में सुख दु:ख की भावना खत्म हो जाती है और उसे अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती है परन्तु मनुष्य इस बात को समझ नहीं पाता इसलिए गीता में भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि-

**ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एवते।**
**आद्यंतवन्त: कौन्तेय न तेषु रमते बुध:।।**

महर्षि नारद के अनुसार भक्ति प्रेम-स्वरूपा और अमृतस्वरूपा है जिसे प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध, अमर तथा तृप्त हो जाता है-

**सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा,**
**अमृतरूपा च। यल्लब्ध्वा**
**पुमान् सिद्धो भवति,**
**अमृतो भवति, तृप्तो भवति।।**

भागवतकार के अनुसार सांसारिक विषयों का ज्ञान देने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति निष्काम रूप से जब भगवान् की ओर मुड़ती है तो उसे भक्ति कहते हैं-

**देवानां गुणलिंगानाम् आनुश्रविक-,**
**कर्मणाम् असत्या एवैकमनसो वृत्ति:।**
**स्वाभाविकी तु याऽनिमित्ता,**
**भागवती भक्ति: सिद्धेर्गरीयसी।।**

भक्त भगवान् से विविध रिश्तेनातों के रूप में स्वयं को जोड़ता है क्योंकि भक्त और भगवान् का रिश्ता इन शब्दों में दिखाई पड़ता है-

**त्वमेव माता च पिता त्वमेव,**
**त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।**

**त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,**
**त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।**

भक्ति में समर्पण की भावना सर्वोच्च होती है, जिसके कारण भक्त और भगवान् बहुत नज़दीक आते हैं।

श्लोक 18-68 में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है- जो मुझसे परम प्रेम करके इस रहस्यमय गीताशास्त्र को मेरे प्रेमी भक्तों से कहेगा, वह नि:सन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।

भगवान् कहते हैं कि गीता मेरा मुख्य मंतव्य है। जो मेरे इस गुह्य मंतव्य को स्पष्ट शब्दों और योग्य अर्थों में किन्ही दूसरों को अर्थात् प्रभु-प्रेम में मग्न रहने वालों को कहेगा, वह परमोच्च स्थिति को प्राप्त करेगा, इसमें संदेह नहीं है। किसी भी प्रकार से मुझको पहिचान कर जो जीवन में मुझसे चिपककर रहेगा, वह- **''मामेवैष्यत्यसंशयः''** नि:सन्देह मेरे पास आयेगा।

भक्ति के प्रमुखत: दो प्रमुख मार्ग हैं-

1. निर्गुण भक्ति, 2. सगुण भक्ति

उपनिषदों में वर्णित ईश्वर का स्वरूप मूलतः निर्गुण, निराकार इंद्रियों से अगम्य, अरूप और अगोचर है तो सगुण विचारधारा में ईश्वर, सगुण, साकार इंद्रियगम्य, सरूप और दृष्टिगोचर है।

जब मानव भगवान् की आराधना करता है तो उसके लिए वहाँ तीन सोपानों का होना अनिवार्य है। प्रेम का दूसरा अर्थ श्रद्धा भी है। अत: प्रेम से भक्ति की ओर जाने के लिए प्रीति का रास्ता अपनाना पड़ता है और तभी मुक्ति संभव है। इसलिए- **प्रेम-प्रीति-भक्ति-मुक्ति (मोक्ष)।**

इस प्रकार से हमने यह देख लिया कि निर्गुण भक्ति अथवा सगुण भक्ति इन दोनों की अंतिम मंजिल ईश्वरप्राप्ति और मोक्ष ही हैं। कुछ भक्त मुक्ति को हेय मानते हुए भक्ति में ही डूबना चाहते हैं, यह अलग बात है। परन्तु रहस्यवाद की अंतिम परिणति मुक्ति में ही होती है।

**अध्यक्ष, दयानन्द वैदिक शोधपीठ एवं संस्कृत विभाग,**
**दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर।**

# श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात में भक्ति का स्वरूप

– डॉ. रेणु बाला

निर्मल सम्प्रदाय के सन्त-कवि श्रीहरिसिंह साधु द्वारा सिक्ख गुरु साहिबान के चरित को आधार बनाकर लिखा 'श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात' महाकाव्य अनुपम ग्रन्थरत्न है। इसके 15 विश्रामों में कवि ने सिक्खगुरुसाहिबान के जीवनदर्शन एवं ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ सिक्ख धर्म-दर्शन एवं भक्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों को अत्यन्त कुशलतापूर्वक प्रतिपादित किया है।

भक्ति का स्वरूप, भक्ति द्वारा मोक्ष की प्राप्ति, सच्चे भक्त आदि के सम्बन्ध में सिक्ख गुरुओं के विचारों को अभिव्यक्त करने वाला श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात जिज्ञासुओं के लिए धर्म एवं भक्ति की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

सिक्ख गुरुसाहिबान की अमृतवाणी आदिग्रन्थ 'श्रीगुरुग्रन्थसाहिब' में संगृहीत है। श्रीगुरुग्रन्थसाहिब में मुख्य रूप से विश्वमंगलकारी एवं ज्ञानप्रदायिनी श्रीहरि-भक्ति एवं प्रभु-हरिनाम-स्मरण का ही प्रतिपादन हुआ है[1] –

**''हरेर्भक्तिस्तु बोधादेः चारणं विश्तारिणी।''**

(15/119)

श्रीगुरु नानक एवं सभी सिक्ख गुरु-साहिबान ने प्रभु-नाम-स्मरण एवं प्रभु-भक्ति का सर्वत्र प्रचार-प्रसार किया। कलियुग में प्रभु-भक्ति एवं हरि-नाम-स्मरण को भी मानवोद्धार का साधन माना गया है। भक्ति के सम्बन्ध में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि ''बाहर के सब भोगों से पराङ्मुख होकर सब विषयों से वैराग्य ग्रहण कर जब मन की सत्त्वप्रधान अन्तर्मुखी वृत्ति हो जाती है तो उसे भक्ति कहा जाता है –

**बाह्यभोगोपरामेण गुणानां विषयारतौ।**
**सत्वकारा मनोवृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते।।**

(4/124)

श्रीगुरु नानक देव जी ने संसार कल्याण हेतु देश-विदेश में भ्रमण किया तथा लोगों को प्रभु-भक्ति एवं नाम-स्मरण की दीक्षा देकर, जन-सामान्य का उद्धार किया। लोगों को मुक्ति का सरल उपाय हरिनामस्मरण, प्रभुध्यान एवं सत्पुरुषों की सेवा जैसे पवित्र कर्मों का अनुष्ठान बताया–

**हरेर्नाम हरेर्ध्यान साधुसेवा च पावनी।**

**इदं सर्वं हि कर्तव्यं मोक्षमार्गोपसेविना।।**
(2/73)

गुरुसाहिबान की दृष्टि में प्रभुनाम-स्मरण ही मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय है। मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपने किसी भी ध्येय देव-रामनाम, शिवनाम, विष्णुनाम, गणेशनाम, गायत्रीजाप, ओंकार सत्यनाम किसी के भी नामस्मरण द्वारा भक्ति कर सकता है। सब के मूल में श्रीहरि की भक्ति ही सन्निहित है। मोक्ष के जिज्ञासु व्यक्ति के लिए कलियुग में अपने उद्धार के लिए हरिभक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है –

**विष्णुभक्तिस्ततः कार्या सर्वदैव मुमुक्षुभिः।**
**कलौ काले ततो भिन्नं नास्ति जीवहितावहम्।।**
(2/193)

श्रीगुरु नानक देव जी ने अपनी बहन तथा माता-पिता को भी प्रभुभक्ति की प्रेरणा दी। गुरु जी अपनी माता जी से कहते हैं कि यही भक्ति आपके परमपद मोक्ष की सिद्धि का हेतु बनेगी, क्योंकि भक्तिमार्ग मनुष्य को अनेक प्रकार से मुक्ति प्रदान करवाने वाला है –

**दृढा भक्तिस्त्वया कार्या हरौ मातर्निरन्तरम्।**
**पारम्पर्येण कैवल्यं तथाभूता करिष्यति।**
**चतुर्धा मोक्षहेतुः स्यात्साक्षान्नैवात्र संशयः।।**
(4/133-134)

श्रीहरि की भक्ति और साधुओं की सेवा ये दोनों जहां समुचित रीति से विद्यमान हैं, वहां सांख्य, योग आदि मोक्ष के साधनों का स्वयमेव आविर्भाव हो जाता है –

**हरेर्भक्तिः सतां सेवा यत्र मातः प्रवर्तते।**
**तत्र सांख्यस्य योगस्य मोक्षहेतोरवस्थितिः।।**
(3/122)

श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात के सातवें विश्राम में गुरु अंगददेव जी अपने शिष्य अमरदास जी से भक्ति की महिमा बताते हुए कहते हैं कि भक्ति का ऐसा परम प्रभाव है कि निर्धन आदमी भी धनी एवं महान् बन जाता है-

**हरिभक्तो दरिद्रोऽपि सर्वतो परं उच्यते।**
(7/32)

सन्तों की पवित्र सेवा एवं प्रभुभक्ति के परिणामस्वरूप ही महर्षि वाल्मीकि, नारद, श्रीरन्तिदेव, सुदामा, राजा भक्तदास, राजा अम्बरीष, भक्त रविदास, भक्त नामदेव आदि अनेक सन्त-महापुरुषों ने उस परमतत्त्व को प्राप्त किया। धन्ना भक्त एवं त्रिलोचन की कथा प्रसिद्ध ही है –

**दासभावं हरौ कृत्वा हरिदासं करोत्यसौ।**
**विनायासं हरिं विन्देद्यथा धन्नात्रिलोचनौ।।**
(7/37)

श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात में पूर्वाचार्यों द्वारा धर्मशास्त्रों एवं पुराणों में प्रतिपादित नवधा भक्ति का विवेचन करते हुए श्रीगुरु नानक देव जी कहते हैं कि प्रेमामूलक भक्ति के नौ भेद हैं-श्रीहरि-कथा को सुनना, कहना, स्मरण करना, विग्रह-मूर्ति की चरण-सेवा, प्रणाम,

प्रभु का दास बनना, श्रीहरि को ही अनन्य हितैषी मानना तथा उन्हीं के आगे स्वयं को समर्पित करना–

**भक्तिरेषा पुरा प्रोक्ता तत्कृता प्रेमलक्षणा।**

(2/98)

**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।**
**अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।**

(2/97)

यह भक्ति आत्मस्वरूप जानने का मुख्य हेतु है। वेदप्रतिपादित 'विज्ञानं ब्रह्म', 'तत्त्वमसि' वेदान्तवाक्यों का आचार्यपरम्परा से श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि के द्वारा पुनः पुनः दृढता से अभ्यास करना चाहिये और यह अभ्यास श्रीहरि की भक्ति के बिना दृढ़ता को प्राप्त नहीं कर सकता–

**तस्य हेतुस्तु विज्ञानं ब्रह्मतत्वस्य निर्मलम्।**
**तच्च भक्तिं विना साधो नैव कुत्रापि जायते।।**

(2/114)

प्रभुस्मरण को भक्ति का मुख्य आधार माना गया है। यह समस्त दृश्यमान जगत् चित्ति–शक्ति का ही विकास है तथा वह चित्ति–सत्ता मुझसे कोई भिन्न वस्तु नहीं है, इस ज्ञान से चित्ति–शक्ति में निरन्तर स्मरण बनाए रखना चाहिए। जिज्ञासु की इस अवस्था को स्मृति–रूपा भक्ति से सम्बोधित किया गया है –

**इदं सर्वं चित्तेः रूपं सा च मत्तो न भिद्यते।**
**इति ज्ञात्वाचित्तौ कुर्याद् भक्तिं स्मरणलक्षणम्।।**

(2/115)

यही स्मृतिरूपा भक्ति बार–बार अभ्यास करने के परिणामस्वरूप प्रेमलक्षणा भक्ति की निष्ठा का आधार बनती है, जिसे पराभक्ति के नाम से निजानन्द परमात्मा की सम्प्राप्ति का एकमात्र साधन कहा गया है –

**पुनरावृत्तिरूपा सा ततोऽपि प्रेमलक्षणा।**
**जायते सा परा साधो निजानन्दे परात्मनि।।**

(2/116)

श्रीमन्ननारायण के प्रति प्रीतिभाव उत्पन्न होने से साधक रोमांचित हो उठता है और कभी–कभी नयनों से प्रेमाश्रु–धारा प्रवाहित होने लगती है। इस प्रकार सत्य–प्रेम की यह लीला बड़ी विचित्र प्रतीत होती है –

**हरौ प्रेमप्रभावेन जायते रोमहर्षणम्।**
**नेत्रनीरं कदापि स्यात्प्रेमलीला विलक्षणा।।**

(2/117)

साधना की इस परिपक्वावस्था में सगुण–निर्गुण में कोई भेद नहीं रह जाता, जिस प्रकार स्वर्ण एवं उसके बने हुए कुण्डल में यथार्थतः सोना ही सोना होता है उसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं–

**सगुणं निर्गुणं विद्धि निर्गुणं सगुणं तथा।**
**वस्तुभेदो न तत्रास्ति हेमकुण्डलयोर्यथा।।**

(2/118)

सगुणोपासना ही परिणामस्वरूप में निर्गुण–स्वरूप की उपासना में समाहित होती है। जिस प्रकार छिलके के पश्चात् ही उसके अन्दर विद्यमान फल की प्राप्ति होती है ठीक

वैसे ही सगुणोपासना के अन्तवर्ती निराकार रस की संप्राप्ति होती है–

**सगुणोपासनं चैवं निर्गुणे पर्यवस्यति।**
**त्वचोपेतफलोग्गसा निरावर्णरसे यथा।।**

(2/131)

श्री गुरुअर्जुनदेव जी अपने सुपुत्र श्री हरिगोविन्द जी को भक्ति का सदुपदेश देते हुए कहते हैं कि ''हे प्रिय! तुम निर्गुण एवं सगुण श्रीहरि की भक्ति का सदा आश्रय ग्रहण किये रहना। श्रीप्रभु की भक्ति ही जन्म–मृत्यु के भय को मिटाने वाली है –

**भक्तिरेषा त्वया कार्या निर्गुणे गुणसंयुते।**
**हरौ साधो कृता देवी जन्ममृत्युभयापहा।।**

(10/77)

इस भक्ति–साधना से ही क्रमशः योग और ज्ञान का मार्ग खुलता है। इसके बिना उन दोनों की संगति का अन्य कोई उपाय नहीं है। वेदविज्ञ, महामनीषियों का यही सर्वतन्त्र–स्वतन्त्र सिद्धान्त है। (10/77)। परन्तु सर्वस्व–त्याग के बिना पराभक्ति की प्राप्ति होना कठिन है। इस संबंध में बालक ध्रुव का नाम सर्वोपरि प्रसिद्ध है –

**सर्वत्यागं विना सापि परां काष्ठां न गच्छति।**
**सार्वभौमपदत्यागो दृश्यतां ध्रुवबालके।।**

(10/78)

भक्ति का थोड़ा–सा सेवन भी कल्याणकारी बन जाता है। अजामिल, गजराज, वेश्या (पिङ्गला) आदि कितने ही भक्ति–भाव से तर गये–

**स्वल्पापि सद्गतेर्हेतु नात्र चिन्ता सुयुक्तिका।**
**अजामिलो गजो वेश्या सन्ति मानान्यनेकशः।।**

(10/80)

इस प्रकार यह भक्ति मनुष्य के कर्म–बन्धन से मुक्ति का साधन है। इसके बिना मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं, जैसा कि श्रीगुरु नानक देव जी का कथन है –

**''ईशभक्तिं विना साधो मोक्षसम्भावना कुतः।''**

(2/96)

इस संबंध में गुरु गोविन्द सिंह जी का भी कथन है कि मुक्ति के साधनों को सत्वप्रधान श्रीविष्णु की भक्ति का आश्रय ग्रहण करना ही समुपयुक्त है, उससे ही सब प्रकार के कार्यों की संसिद्धि प्राप्त हो सकती है –

**अतः सत्वप्रधानस्य हरेर्भक्तिः सुयुक्तिका।**
**स्वीयकार्यस्य सिद्ध्यर्थं सदा कार्या मुमुक्षिणः।।**

(15/121)

इस प्रकार श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाला एक विलक्षण ग्रन्थ है।

**– अध्यक्षा, संस्कृत विभाग,**
**गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।**

# संतकवि दादू का भाव-भक्ति-पथ

– डॉ. सुनीता कोहली

**आपा मेटै हरि भजै,**
**तन मन तजै विकार**
**निर्वेरी सब जीव सो,**
**दादू यह यहु मत सार।**

दादू के मत का सार सिर्फ तन्मय भाव से ही हरि का भजन है। यह भजन सर्वव्यापी और अव्यक्त प्रभु के गुणों की सत्ता के अहसास से सम्भूत हैं। जिसने आपा को मेट दिया हो। दादू ने संसार में रहते हुए भी उस अव्यक्त तक पहुंचने के लिए जिन सोपानों का सहारा लिया उनमें से कतिपय इस प्रकार हैं -

**1. अहं का परित्याग :** भक्तिपथ में 'अंह भावना' सर्वथा बाधक है। 'अहं भावना' से ग्रस्त जीव को अपने स्वरूप, मिथ्या शरीर और शक्ति पर गुमान रहता है। बिना अपनी लघुता एवं प्रभु की महत्ता के अहसास के भक्ति हो ही नहीं सकती।[1]

संत कवि दादू मानते हैं कि प्रभु की प्रीति का महल बारीक है। वह महल है, पर वहाँ दो नहीं समा सकते हैं अर्थात् वहां या तो मैं रहेगा या क्योंकि भक्ति का महल इतना छोटा है कि उसमें दो के लिए जगह नहीं।[2]

**2. हरि का स्मरण एवं ध्यान :-** भजन, स्मरण और ध्यान तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं। एकान्त में ध्यान होता है। यह ध्यान की स्थिति तन्मय होने पर आती है। प्रीतिजन्य ध्यान साधक को निर्भीक बनाता है, प्रभु की प्रीति की प्रेरणा से प्रेरित ध्यान सर्वाधिक सहज और आनन्दमय है। यही साध्य तक पहुँचने का मूल मन्त्र है। ध्यान के सम्बन्ध में दादू कहते हैं -

**दादू लै लागी तब जाणि यै जे कबहूँ छूटि न जाइ,**
**जीवित यौ लागी रहै मूवां मंझि समाइ**[3]

दादू का उपदेश है कि मन को अधीन कर परमात्मा के स्वरूप के गुणात्मक आस्तित्व पर लगा देना चाहिए। मन के लगने से वह धीरे-धीरे प्रभुमय हो जाया करता है। इसी ध्यान से ही साधक स्मरण करता है, ध्यान सम्भूत स्मरण ही सच्चा स्मरण है, साधना का महत्त्वपूर्ण चरण है। सांस लेने और

1. दादू ग्रन्थावली (संपा.) परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 47
2. वही, पृ. 47 3. वही, पृ. 91

निकालने की प्रक्रिया के साथ ही साथ प्रभु का नामस्मरण जाप का व्यावहारिक रूप है। प्रभु का स्मरण किसी नामविशेष की अपेक्षा नहीं करता है। प्रभु के अनन्त नाम हैं। जो किसी को इच्छा लगे उस का स्मरण करने से प्रभु प्राप्ति हो जाती है।[4]

यही स्मरण प्रभु के गुणगान की तन्मयता की भूमि पर ले जाता है। ध्यान एवं स्मरण गुणगान ही सर्वोत्तम है। सच्चे साधक इसी पथ का सहारा लेकर प्रणय-साधना करते हैं। नाम-स्मरण में प्रीत, गुणगान में तन्मयता, स्मरण में प्रीति और लगन में स्नेह होना जरूरी है-[5]

**नाव सपीड़ा लीजिए प्रेम भगति गुण गाइ**
**दादू सुमिरण प्रीत सौ, हेत सहित ज्यौ लाइ**[6]

राम का नाम रटना, उनके गुणों का गान अगम्य की ठांव तक ले जाता है, गान अमृत रस का पान कराता है। उन्होंने श्रवण, रसपान, गुणगान के प्रभाव स्वरूप चेतना के राममय, फिर रोम-रोम के राममय होने की उपलब्धि का बखान किया है।[7]

दादू की पंक्तियों में प्राप्ति की स्थितियाँ भी मिलती हैं। कवि प्रभु की भक्ति की शर्तों का पालन कर उन्हें सहज अंगीकार करके प्रभु के प्रति समर्पित हो जाता है। इसीलिए अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल की वर्जना, रक्षिष्यति विश्वास:, रक्षक के रूप में वरण की स्थिति उनकी पंक्तियों में तरलता के साथ नजर आती है।[8]

**3. इन्द्रिय तथा मन के विकारों का परित्याग :** अविद्या माया ने पूरे विश्व को अपने अधीन कर रखा है पर प्रभु का भक्त उसकी गिरफ्त में नहीं आता है। उनका कहना है कि भक्त की जितनी भी मानसिक बुराईयां या विकार है वे तो प्रभु की विरह-अग्नि में जल जाते है, मन के सभी विकार मिटने से बेचारा मन पंगु हो जाता है और केवल भगवान् के सहारे ही चलता।[9]

**4. निर्वैर होना :** ईश्वर का भक्त वैर-भावना से परे होता है। निर्वैरी सन्त साधक को विश्व के चींटी से लेकर कुंजर तक के प्राणियों में परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। दादू का मानना है कि साधुओं की संगति में रहकर भगवान् का भक्त जिस प्रेमरस को पा जाता

4. दादू ग्रन्थावली पृ. 17
5. डॉ. विद्यात्तमा मिश्र, दादू तुम्हारा दास, गाजियाबाद : मीनू पब्लि., 2012 पृ. 71
6. आ. परशुराम चतुर्वेदी, संतकाव्य धारा, पृ. 141
7. दादू ग्रन्थावली, पृ. 16.
8. डॉ. विद्योत्तमा मिश्र, वही, पृ. 74
9. दादू ग्रन्थावली, पृ. 142.

है। जब वह संसार में घूमता है तो ऐसा आनन्दमय प्रेमरस उसको कहीं भी नहीं मिलता।[10]

**5. आत्मसमर्पण :** आत्मसमर्पण ही का दूसरा नाम आनन्दप्राप्ति है। वस्तुतः आत्मसमर्पण असीम आनन्द का स्रोत है और इसी आत्म समर्पण के क्षणों में ही वह कहता है-

तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिण्ड परान
सब कुछ तेरा तू है मेरा, यह दादू का ज्ञान[11]

**6. अन्तर्धान लय :** अन्तर्धान से तात्पर्य है- भक्तिमय से प्रभुमय होना या उसी में लीन हो जाना। उसके विरह के ताप और भक्तिसाधना के प्रभाव से समस्त विकार भस्मीभूत हो जाते हैं। साधक बाह्य कार्यों से विरत होकर हृदय में प्रिय का ध्यान करते हुए समाधि में लीन हो जाता है। परमात्म-रूप स्थिति पर साधक स्वयं पहुँच जाता है। ऐसी स्थिति में पहुँचने पर दादू कहते हैं - 'पूरे सो परिचय भया, पूरी मति जागी' इस पूर्ण से परिचय महती उपलब्धि है। असीम साधक उस पूर्ण को अपनी सीमा में पूर्णता से आत्मसात् कर लेता है। भक्तिजन्य यह उपलब्धि प्रभु के अनुग्रह का फल है। इस समर्पित साधना में चेतना-शक्ति जागृत हो प्रभु का अहसास करती है। इसीलिए दादू को विश्व ही प्रभुमय नजर आता है। दादू की भक्ति प्रभु के समान ही अखण्ड, शाश्वत एवं एकरस है, इसीलिए वे 'आदि अंत एक रस टूटै नहिं धागा' की घोषणा भी करते हैं। दादू परमात्मा के परम सेवक के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए लिखते हैं -

**दादू जब लगि रामं है तब लगि सेवग होई**
**अखण्डित सेवा एक रस दाइ सेवग सोई ।।**[12]

दादू की एकमात्र अभिलाषा है- प्रेम-रस का पान। दादू को रामरूपी रस से भरा प्रेम-प्याला ही चाहिए। उनका जीवनरूपी प्याला रामरूपी प्रणय-रस से भरा रहे, इसके अलावा उनकी कोई कामना नहीं, ऋद्धि-सिद्धि- मुक्ति भी नहीं।

**705, जालन्धर कुँज, कपूरथला रोड़, जालन्धर।**

---

10. वहीं, पृ. 143
11. परशुराम चतुर्वेदी, सन्तकाव्यधारा, पृ. 140
12. दादू ग्रन्थावली, पृ. 70

# श्रीमद्‌भागवतपुराण में भक्ति-योग

– डॉ. विशाल भारद्वाज

पुराण भारतीय साहित्य के गौरव ग्रन्थ हैं। पुराणों के अध्ययन के बिना कोई भी व्यक्ति विचक्षण नहीं माना जा सकता। प्राचीन मनीषियों का तो यह शङ्खनाद था कि कोई द्विज चारों वेदों को तथा उनके अङ्गों को जानता भले ही हो, यदि वह पुराण को नहीं जानता, तो वह विचक्षण-चतुर तथा शास्त्र-कुशल नहीं माना जा सकता। वेद तो हमारे सनातनधर्म के सर्वप्रामाणिक तथा प्राचीन ग्रन्थ हैं ही, परन्तु वेदों के उपबृंहण होने के कारण पुराणों को 'वेद का पूरक' माना जाता है। प्राचीन भारत का ज्ञान तथा विज्ञान पशु तथा पक्षी विज्ञान, वनस्पति तथा आयुर्वेद विज्ञान, भौगालिक धार्मिक, आध्यात्मिक आदि अनेक प्रकार का ज्ञान एकत्र कर पुराणों में भर दिया गया है। इसका परिणाम यह है कि पुराण विश्वविद्या का कोश बन गए हैं।

विद्वानों का मानना है कि जिस प्रकार आजकल विश्वकोष लिखने का प्रचलन है, जिससे विस्तृत ज्ञान संक्षेप में शिक्षित जनता के ज्ञानवर्धन के लिए प्रस्तुत किया जाता है, उसी प्रकार अग्नि, नारद, गरुड़, विष्णु, श्रीमद्‌भागवत आदि पुराणों की रचना ज्ञान-विज्ञान को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से की गई है। पुराणों की रचना व्यावहारिक सरल भाषा में की गई है।

'श्रीमद्‌भागवतपुराण' पाण्डित्य की कसौटी माना जाता है। यह समस्त श्रुतियों का सार है, महाभारत का तात्पर्य निर्णायक है तथा ब्रह्मसूत्रों का भाष्य है। यह जहां ज्ञान का भण्डार है वहीं भक्ति का स्रोत भी है। ''भक्तियोग'' भारतीय दर्शन का एक प्रमुख विषय माना जाता है। नारद जी ने 'भक्ति' का लक्षण बताते हुए 'भक्ति-सूत्र' नामक ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा है कि- ईश्वर के प्रति अत्यधिक प्रेम ही भक्ति है।[1] भागवतपुराण में भी 'भक्ति के मर्म' का वर्णन किया गया है। श्रीमैत्रेय जी विदुर जी से कहते हैं कि एक बार माता देवहूति ने महामुनि कपिल जी से कहा कि :-

प्रभो! प्रकृति, पुरुष तथा महत्तत्त्वादि

1. भक्तिसूत्र, 1.2

का जैसा लक्षण सांख्यशास्त्र में कहा गया है तथा जिसके द्वारा उनका वास्तविक स्वरूप अलग-अलग जाना जाता है तथा भक्तियोग को ही जिसका प्रयोजन कहा गया है, वह आपने मुझे बताया। अब कृपा करके भक्तियोग का मार्ग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये।[2] माता के वचनों को सुनकर कपिल मुनि ने कहा :

**''भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनी भाव्यते।**
**स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते।।''**

साधकों के भाव के अनुसार भक्तियोग का अनेक प्रकार से प्रकाश होता है, क्योंकि स्वभाव तथा गुणों के भेद से मनुष्यों के भाव में भी विभिन्नता आ जाती है।[3]

महामुनि कपिल ने भक्तों की तीन श्रेणियों का वर्णन किया है – तामस, राजस एवं सात्त्विक। इनमें से तामस ''जो भेददर्शी क्रोधी पुरुष हृदय में हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्य का भाव रखकर मुझसे प्रेम करता है, वह मेरा तामस भक्त है।[4]'' राजस भक्त का लक्षण है – जो पुरुष विषय, यश तथा ऐश्वर्य की कामना से प्रतिमादि में मेरा भेदभाव से पूजन करता है, वह राजस भक्त है।[5] सात्त्विक भक्त के लिए कहा गया है कि- जो व्यक्ति पापों का क्षय करने के लिए, परमात्मा को अर्पण करने के लिए तथा पूजन करना कर्त्तव्य है – इस बुद्धि से मेरा भेदभाव से पूजन करता है, वह सात्त्विक भक्त है।[6]'' तीनों भक्तों के लक्षण के बाद निर्गुण भक्तियोग का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं कि- जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मन की गति का तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम तथा अनन्य प्रेम होना ही निर्गुण भक्तियोग है।[7]''

निष्काम भक्त भगवान् की सेवा का परित्याग नहीं करता। भगवत्-सेवा के लिए मुक्ति का तिरस्कार करने वाला यह भक्तियोग ही परम पुरुषार्थ कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणों को लांघकर भगवान् के प्रेमरूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

भागवत में उस परम पिता परमात्मा को निखिल विश्व में व्याप्त माना गया है। परमात्मा की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए उसे समस्त जीवधारियों में अवस्थित बतलाया गया है तथा स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के उत्पादक, पालक परमपिता परमात्मा ही है। अत: कीट-पतंग से लेगर मनुष्य तक सभी प्राणियों में परमात्मा

---

2. श्रीमद्भागवतपुराण, 3.29, 1-2 3. वही, 3.29,7 4. वही, 3, 29, 8.
5. वही, 3,29,9. 6. वही, 3,29,10. 7. वही, 3,29,11-12

का निवास होने से जो व्यक्ति भेदभाव रखते हुए दूसरे प्राणियों से द्वेष रखता हुआ किसी विशेष वस्तु में मेरे स्वरूप की कल्पना कर उसी की पूजा करता है। वह एक प्रकार से मेरे से द्वेष ही करता है। अत: भक्त को चाहिए कि वह सम्पूर्ण विश्व को परमपिता परमात्मा का रूप समझकर सभी का आदर करे सभी से प्रेम करे तथा सभी प्राणियों की रक्षा का भाव मन में रखे। अत: मनुष्य को अपने धर्म में स्थित होकर तभी तक परमात्मा के नाना रूपों से गृहीत उसकी प्रतिमाओं का पूजन आदि करना चाहिए जब तक सभी प्राणियों के लिए उसके हृदय में एकता की भावना न आ जाए[8]। यह भी स्पष्टरूप से पुराणों में प्रतिपादित है कि भगवान् को कौन से भक्त अतिशय प्रिय हैं। प्राय: सभी जगह प्रिय भक्तों के लिए कहा गया है कि- जो अपने सम्पूर्ण कर्म तथा फल को मुझे अर्पण करते हुए किसी भी प्रकार के भेदभाव से रहित मेरी उपासना करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। अत: भगवान् ही सबमें जीवरूप से व्याप्त हैं, यह मानते हुए भक्त को इन प्राणियों को ईश्वर का अंश समझ इनको तत्सम मानकर प्रणाम आदि करे तथा चित्त को सर्वदा भगवद्-भक्ति में लगाए रखे।

जिस प्रकार वायु के द्वारा उड़कर जाने वाला गन्ध मनुष्य के घ्राणेन्द्रिय तक पहुंच जाता है, उसी प्रकार भक्तियोग में लीन व्यक्ति रागद्वेषादि विकारों से रहित परमात्मा तक पहुँच जाता है।

**- संस्कृत विभाग, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर।**

---

8. श्रीमद्भागवतपुराण, 3.29.25

# भक्ति और नवधा भक्ति

– डॉ. जयश्री राठौड़

ईश्वर के चरणों में पूर्णरूप से आत्मसमर्पित होना ही भक्ति है। श्रद्धा, सम्मान, अनुराग और सेवा को भी भक्ति के संदर्भ में समझा जाता है। भक्ति में दो पक्षों का समावेश होता है–एक ईश्वर और दूसरा भक्त। भक्त के मन में ईश्वर के प्रति आसक्ति होती है। आसक्ति से प्रेम होता है। सच्चे भक्त में प्रेम एवं सदाचार होना आवश्यक है। भक्त की ईश्वर के प्रति प्रेम की उत्कृष्टता ही भक्ति का स्वरूप धारण कर सम्बन्ध स्थापित करती है। वह अपना सब कुछ त्याग कर ईश्वर के लिए अर्पित हो जाता है। वह ईश्वरदर्शन के लिए अधीर हो जाता है।

महर्षि नारद के अनुसार भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा भी है। शांडिल्य ने ईश्वर में परम अनुरक्ति को भक्ति कहा है। यह भक्ति निष्काम होनी चाहिए। भागवत में ईश्वर से निष्काम और अनवरत प्रेम को भक्ति कहा गया है। निम्बार्क ने भगवान् के रूप, गुण आदि के विषय में समग्र चित्त को व्याप्त कर देने वाली वृत्ति को भक्ति कहा है। रामानुजाचार्य ने कहा है कि परमात्मा का निरन्तर स्मरण करना भक्ति है। श्री रूपगोस्वामी ने अपने ग्रन्थ 'भक्तिरसामृतसिंधु' में कहा है कि ईश्वर के प्रति प्रेम भक्ति है। प्रेम या अनुरक्ति का आध्यात्मिक रूप ही भक्ति है। पुराणों में सगुण एवं निर्गुण भक्ति का विवेचन है। सगुण भक्ति को अधिक सुगम एवं शीघ्र फल देने वाली माना गया है। वैष्णव पुराणों में सगुण भक्ति की ही श्रेष्ठता अधिक बतायी गयी है। विष्णु-पुराण में निर्गुण भक्ति को अगम बताया है जो भक्त ईश्वर के गुणों के श्रवण से, ईश्वर को सबमें समान जानता है और अपनी कर्मगति को अविच्छिन्न भाव से ईश्वर में अर्पण करता है, उस आसक्ति को निष्काम या निर्गुण भक्ति (सुधासार) कहते हैं। हिंसा, दम्भ, क्रोध आदि के वश अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए की गयी भक्ति 'तामसी भक्ति' कहलाती है। लौकिक विषय, यश अथवा ऐश्वर्य की

कामना से भेद-दृष्टिपूर्वक की गयी भक्ति राजसी-भक्ति है। जब भक्त अपने सब कर्मों को ईश्वर को अर्पण कर ईश्वर में आसक्त है, वह सात्विक भक्ति है। सात्विक भक्त मुक्ति चाहता है, राजसी भक्त धन-कुटुम्ब चाहता है, तामसी भक्त पर-अपकार (मेरा बैरी मर जाये) भाव को चाहता है, लेकिन निर्गुण भक्ति करने वाला भक्त मुक्ति को भी नहीं चाहता। वह अनन्य भक्त कुछ नहीं चाहता, उसका न तो कोई शत्रु है और न कोई मित्र। उसको संसार की माया का संताप भी नहीं होता। वह भक्त केवल ईश्वर के दर्शन मात्र से ही परम सुख का अनुभव करता है।

**नवधा भक्ति :** भक्ति के इन प्रकारों के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में भक्ति के नौ प्रकार और बताये गये हैं, जिनको "नवधा भक्ति" कहते हैं। जैसे:- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

**1. श्रवण :-** भगवान् के यश, महत्ता, गुण, उनका पावन नाम तथा उनकी लीलाओं का श्रद्धापूर्वक सुनना ही श्रवण-भक्ति है। उपनिषदों के अन्तर्गत त्रिपाद्विभूतिमहानारायण उपनिषद् में भगवान् की कथा-श्रवण का महत्व बतलाया गया है। एक स्थान पर लिखा है "जब सद्गुरु का कृपा-कटाक्ष होता है तब भगवान् की कथा सुनने एवं ध्यान आदि करने में श्रद्धा उत्पन्न होती है। इससे हृदय की कर्णिका में परमात्मा आविर्भूत होते हैं।

पुराणों में श्रवण-भक्ति का बहुत अधिक महत्व बताया गया है। भगवान् की अनेक लीला-वर्णनों के पश्चात् उनके श्रवण का महत्व बताया गया है। सूरदास तथा नन्ददास ने कृष्ण की अनेक लीलाओं का चिंतन किया है। उन लीलाओं की समाप्ति में बहुधा उन्होंने उनके सुनने और सुनाने का महत्व कहा है। श्रवणभक्ति के प्रभाव के द्योतक बहुधा सूर के शब्द इस प्रकार के हुआ करते हैं :-

**"जो यह लीला सुने सुनावै,**
**सो हरि भक्ति पाइ सुख पावै।"**

इस प्रकार पुराण आदि अनेक ग्रन्थों में भगवान् के चरितों के श्रवण का बहुत महत्त्व बताया गया है। इतना ही नहीं संसार में महापुरुषों के चरित सुनने से भी साधारण जनता के हृदय पर एक अद्भुत प्रभाव पड़ता ही है।

**2. कीर्तन :** भगवान् के नाम, गुण, माहात्म्य और लीला आदि का वर्णन गान तथा पाठ कीर्तन कहलाता है। श्रीमद्भागवत में भी कीर्तन-भक्ति की बहुत महिमा कही गई है। भागवतकार कहता है कि "दोषनिधि कलियुग में एक ही महान् गुण है कि भगवान् कृष्ण के कीर्तन से मनुष्य लौकिक आसक्ति से छूट जाता है।"

विष्णुपुराण में कीर्तन, भक्ति का महत्व बतलाते हुए पराशर जी कहते हैं कि जिनमें (भगवान् में) चित्त लगाने वाला कभी नरक में नहीं जा सकता। जिनके स्मरण में स्वर्ग भी विघ्न रूप है जिनमें चित्त लग जाने पर ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ प्रतीत होता है तथा जो अव्यय, प्रभु निर्मल चित्तवाले पुरुषों के हृदय में स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते हैं, उन्हीं अच्युत का कीर्तन करने से यदि पाप विलीन हो जाते हैं तो उसमें आश्चर्य की क्या बात।

बृहन्नारदीयपुराण में भी नाम-कीर्तन का महत्व बतलाते हुए लिखा है - ''बिना जाने भी जो उनका (भगवान् का) नाम ले लेता है, यह पापों से छूट कर श्रेष्ठ पद को प्राप्त होता है।

**3. स्मरण :** भगवान के नाम, उसके गुण, माहात्म्य, उसकी सर्वव्यापकता, लीला आदि का हमेशा ध्यान रखना तथा उसी की याद में लीन रहना स्मरण-भक्ति है।

गोपालोत्तरतापनी-उपनिषद् में एक स्थान पर श्रीकृष्ण ब्रह्माजी से कहते हैं ''इस प्रकार जो नित्य मेरा ध्यान करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है। श्रीमद्‌भागवत के एकादश स्कंध में कृष्ण उद्धव से कहते हैं - ''जो कोई विषय का चिंतन किया करता है उसका मन विषय कर्मों में लीन रहता है और जो व्यक्ति निरन्तर मेरा स्मरण करता है उसका मन मुझ में ही लीन हो जाता है।

विष्णु पुराण में भी स्मरण-भक्ति का बहुत अधिक महत्व बताया गया है। एक स्थान पर लिखा है - ''श्रीविष्णु भगवान् का प्रतिपल स्मरण करने से सम्पूर्ण पाप क्षीण हो जाने पर मनुष्य फिर नरक में नहीं जाता।''

बृहन्नारदीय पुराण में भी भगवान् के नाम-स्मरण का बहुत अधिक महत्व वर्णित है। एक स्थान पर लिखा है - ''संसाररूप घोर वन की वनाग्नि विष्णु जी ही हैं, जो स्मरणकर्ता के सब पापों को शीघ्र नष्ट करते हैं।'' एक अन्य स्थान पर लिखा है - ''जो जन वैराग्य में परायण विष्णु जी का निरंतर स्मरण करते हैं, वे फिर जन्म नहीं लेते।'' और ''जो विष्णु जी का ध्यान तथा स्मरण करते, पूजा व नमस्कार करते हैं वे संसार को पार कर जाते हैं।''

हरि-स्मरण भक्ति के विषय में सूरदास कहते हैं - ''सब को हरि भगवान् का स्मरण करना चाहिए। हरिस्मरण से सब सुख मिलते हैं। श्रुति और स्मृति सबका यह मत है कि भगवान् के चरणों में चित्त लगाओ। हरिस्मरण के बिना मुक्ति नहीं है। दिन-रात उसी का स्मरण करो।

**4. पाद-सेवन :** श्रीमद्‌भागवत् में पादसेवा का बहुत महत्व बताया गया है। एक स्थान पर लिखा है - जो श्रेष्ठ सज्जन पुण्य, यश वाले भगवान् के नौकारूप चरणों का आश्रय लेते हैं, उनके लिए यह संसार गोवत्सपद के चिन्ह् के

समान है। वे पद-पद में परमपद पाते हैं। इसी से उन्हें कभी विपत्तियों का सामना नहीं करना पड़ता। भागवतपुराण में एक अन्य स्थान पर गरुड़ जी श्रीकृष्ण भगवान् से कहते हैं - ''आज मेरा शरीर धारण करना सफल हुआ। आज मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हो गये, क्योंकि आज मुझे आपकी चरणों की सेवा का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। भगवन्, जिन्हें भी आपके चरणों की सेवा का शुभ अवसर मिला, वे भवसागर से पार हो गये।''

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में पाद-सेवन का महत्व अधिक बताया गया है जिसका प्रभाव भक्ति पर पर्याप्त पड़ा है। सूरसागर में सूर ने एक पद में भगवान् के चरणसेवक श्वपच को गोपाल विमुख ब्राह्मण से अधिक बड़ा और भगवान् का प्रिय बताया है -

**सोइ भलो जो रामहिं गावै।।**
**श्वपच प्रसन्न होइ बड़ सेवक,**
**बिनु गोपाल द्विजन्य न भावै।**

**5. अर्चना :** श्रद्धा और आदर के साथ भगवान् के स्वरूप की पूजा-अर्चना भक्ति कही जाती है। विष्णुपुराण में अर्चन-भक्ति की महिमा बतलाते हुए लिखा है - ''जिसका चित्त जप, होम और अर्चना आदि करते हुए निरन्तर भगवान् वासुदेव में लगा रहता है और उसके लिए इन्द्रपद आदि फल तो अन्तराय (विघ्न) हैं।''

सूरदास ने अर्चन-भक्ति का महत्व सूरसागर के नवम स्कंध में अम्बरीष की कथा में अम्बरीष की अर्चन-भक्ति का उल्लेख किया है। नन्ददास ने भी ''दशम स्कंध भाषा'' में जहाँ वरुण से कृष्ण की पूजा कराई है और 'रूपमंजरी' में रूपमंजरी के हृदय मंदिर के देव कृष्ण की इन्दुमती द्वारा पूजा का उल्लेख किया है, वहाँ उन्होंने अर्चन-भक्ति का ही रूप खड़ा किया है।

**6. वन्दन :** श्रीमद्भागवत में कहा गया है : ''भक्त लोग जब अपने इष्ट के गुण और नाम का कीर्तन करते हैं तब उनका हृदय प्रेमरस में मग्न हो जाता है। वे विवश होकर उन्मत्तों की भाँति कभी रोते हैं, कभी हँसते हैं, कभी नाम का उच्चारण करते हुए जाते हैं और नाचने लगते हैं। वे आकाश, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, चराचर प्राणी, दशों दिशा, वृक्ष आदि सबको विराट पुरुष हरि का शरीर मान कर उनको प्रणाम करते हैं और हरि से भिन्न किसी भी प्राणी अथवा वस्तु को नहीं देखते।''

विष्णु-पुराण में भी हरि-वन्दना का महत्व स्थान-स्थान पर वर्णित है। एक स्थान पर लिखा है कि जो व्यक्ति श्री हरि की वन्दना करते हैं उन्हें यमदूत भी कष्ट नहीं दे सकते।

सूर के काव्य का भी एक अंश उनकी वन्दन-भक्ति के भाव को प्रकट करता है। विनय, प्रार्थना तथा स्तुत भावों को प्रकट करने वाले इनके पद वन्दन-भक्ति के ही उदाहरण कहे जायेंगे। सूरसागर के आरंभ में सूरदास जी

ने 'हरि' के चरणों की वन्दना करते हुए कहा कि –

**चरण कमल बन्दों हरि राई।**
**जाकी कृपा पंगु गिरिलंधै,**
**अंधे को सब कुछ दरसाई।**
**बहिरो सुने मूक पुनि बोले,**
**रंक चले शिर छत्र धराई।**
**सूरदास स्वामी करुणामय,**
**बारबार बन्दों तेहि पाई।**

**7. दास्य-भाव :** भक्त ईश्वर का सेवक बनकर उसमें सर्वदा तन, मन एवं वचन से लीन होता है, वह दास्य भाव कहलाता है। मीरा ने अपने अनेक पदों में स्वयं को गिरधर नागर की दासी कहा है। वे कहती हैं :-

**''मीरा के प्रभु हरि अविनाशी।**
**तुम मेरे ठाकुर, मैं तेरी दासी।।''**

मीरा ने स्वयं को अपने ''साहब'', ''ठाकुर'', ''नाथ'' और ''गिरधर गोपाल'' की दासी कहा है। रसखान ने स्वयं को उपास्य देव का दास माना। सूरदास के भी अनेक पद दास्यभाव से ओत:प्रोत मिलते हैं। सूरदास एक स्थान पर कहते हैं :

**अब मैं नाच्यों बहुत गुपाल,**
**काम क्रोध को पहिर चोलना,**
**कंठ बिषय की माल।**
**महामोह के नुपूर बाजत,**
**निंद्य शब्द रसाल।**
**भंरम भरयो मन भयो,**
**पखावज चलत कुसंगत चाल।**
**तृष्णा नाद करत घट भीतर,**
**नाना विधि दै ताल।**

**8. सख्य-भाव :** इसमें भक्त ईश्वर के साथ मित्रता का भाव रखता है। वह नि:संकोचता से अपने हृदय की सभी भली-बुरी बातों को ईश्वर के सामने व्यक्त करता है। सुदामा की सख्य भक्ति जग प्रसिद्ध है। कृष्ण की बाल-लीला, गोचारण-लीला एवं सुदामा दरिद्रभंजन में सख्य-भाव है। इन प्रसंगों में ईश्वर को सबसे बड़ा मित्र बताया गया है।

नन्ददास के काव्य में अनेकों सख्य भाव की भक्ति के उदाहरण मिलते हैं। नन्ददास के 'सुदामा-चरित' के अंतिम छंदों में कवि ने सख्य-भक्ति के माहात्म्य पर कहा है - ''जो सुदामा की तरह सख्य-भाव से भगवान को भजेगा उसको सब सुख प्राप्त होंगे।''

**''ऐसे जो कोऊ हरि को भजै,**
**हरि उदारता ते सुख सेजे।''**

परमानन्द दास के काव्य में भी सख्य-भक्ति का कुछ परिचय मिलता है। सख्य-भक्ति के रस को चखते हुए गोपरूप से परमानन्ददास गो-चारण तथा छाक के पदों में अपने सखा श्रीकृष्ण से कहते हैं –

**आजु दधि मीठो मदन गोपाल।**
**भावत पात बनाए दोना दिये सबन को बाँट।**

× × × × × × ×

९. **आत्मनिवेदन :** भक्त भगवान् के सामने अपना हृदय खोलकर रख देता है। वह जानता है कि प्रभु से कोई बात छिपाई नहीं जा सकती। वेद के शब्दों में गुप्त से गुप्त स्थान में होने वाली गुह्य से गुह्य मन्त्रणा तक को सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा प्रभु जान लेते हैं। आत्मनिवेदन में एक दृष्टि और रहती है। जो सत्ता भक्त से दूर है, उससे वह कैसे आत्मनिवेदन करे और प्रभु ही निकट हैं, अतः भक्त जब चाहे और जहाँ चाहे उसके आगे आत्मनिवेदन कर सकता है। श्रीमद्भागवत में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ भक्त भगवान् के सामने आत्मनिवेदन करता है। सूर के भी अनेक पदों में आत्मनिवेदन का भाव अभिव्यंजित हो रहा है।

**कोटिक कला काछि दिखराई,**
**जल थल सुधि नहीं काल।**
**सूरदास की सबै अविद्या,**
**दूरि करौ नन्दलाल।।**

इस प्रकार इन नौ तरह की भक्ति को नवधा भक्ति कहते हैं। अंतः कहा जा सकता है कि भक्ति व्यक्ति और समष्टि के बीच का प्रेम है। भक्ति एक यात्रा है, जीवन-रस है। भक्ति में डूब कर ही भक्तिरस को समझा जा सकता

समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय महाविद्यालय कोटा, राजस्थान।

# भक्ति की महिमा

– डॉ. शैलजा

जिस प्रकार एक जिज्ञासु की सहज और स्वाभाविक अभिलाषा रहती है कि उसे कोई ऐसा ब्रह्मज्ञानी मिल जाए– जो मैं कौन हूँ और मेरा कौन है ? इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर देकर उसकी जिज्ञासा को शान्त कर दे। इसी प्रकार एक मुमुक्षु के मन में भी यह इच्छा रहती है कि वह किस प्रकार अपने प्रभु को संतुष्ट करे ताकि उसे अपने इष्ट की प्रसन्नता का प्रसाद प्राप्त हो जाए, मोक्ष का मार्ग मिल जाए और आत्यंतिक दु:खों से निवृत्ति हो जाए। महापुरुष कहते हैं– **जहां चाह वहां राह** की तर्ज पर भगवान् मुमुक्षु की इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसे किसी पूर्ण संत का सान्निध्य प्रदान कर देते हैं। भगवान् बड़े दयालु हैं, कृपालु हैं और अकारण करुणावरुणालय हैं। वे चाहते हैं कि करोड़ो जन्मों से त्रिताप की अग्नि में झुलसती हुई जीवात्मा को किसी प्रकार विश्रान्ति मिल जाए और आवागमन के दुष्चक्र से छूट जाए। जगद्गुरु शंकराचार्य जी का कथन है कि वह प्राणी परम सौभाग्यशाली और ईश्वर का कृपापात्र है, जिसका **मनुष्य योनि में जन्म हो गया है, मोक्ष की कामना उत्पन्न हो गई है और किसी तत्वज्ञानी का सनिध्य प्राप्त हो गया है**। इन तीन चीजों का मिलना ईश्वर की कृपा पर ही निर्भर है। प्रभु-कृपा से ये वस्तुएं प्राप्त होती हैं, अन्यथा नहीं।

एक बार देवर्षि नारदजी ने परमज्ञानी श्रीसनकजी से पूछा– हे महामुने! आप तो भगवान् के परमप्रिय हैं और सर्वज्ञ भी हैं, अत: भगवान् जनार्दन जिस प्रकार संतुष्ट होते हैं, वह उपाय मुझे बताने की कृपा करें। इस पर सनकजी ने कहा– नारदजी ! सच्चिदानंद-स्वरूप परमदेव भगवान् नारायण का सम्पूर्ण चित्त से भजन-सुमिरन करने से परम शान्ति की प्राप्ति होती है। भगवान् की शरण लेने वाले को शत्रु मार नहीं सकता, ग्रह-नक्षत्र पीड़ा नहीं दे सकते तथा राक्षस उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकते। भगवान् में जिसकी दृढ़ भक्ति है उसके सम्पूर्ण श्रेय सिद्ध हो जाते हैं। अत: भक्त पुरुष-शिरोमणि है,

सबसे श्रेष्ठ है। मनुष्य के उन्हीं पैरों को सफल जानना चाहिए जो देवालय में दर्शन के लिए जाते हैं या भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम और प्रभाव की पावनगाथा सुनने के लिए सत्संग में पदार्पण करते हैं। उन्हीं हाथों को सफल समझना चाहिए जो भगवान् की पूजा-अर्चना, वंदना में तत्पर होते हैं। मनुष्य के उन्हीं नेत्रों को पूर्णतया सफल जानना चाहिए जो भगवान् का दर्शन करते हैं और जीह्वा भी वही सफल है जो निरंतर हरिनाम के जप और कीर्तन में संलग्न रहती है।

परमभक्त श्रीसनकजी आगे कहते हैं- देवर्षे! यह संसार असार है और मोहमाया में डालने वाला है। इसलिए श्रीहरि की आराधना ही परम सत्य है। भगवद्भक्तिरूपी कुठार से संसार-बंधन को काटकर सुखी हो जाना ही मानव-जीवन की सफलता है। वही मन सार्थक है जो भगवान् के चिंतन में लगता है तथा वे ही कान वंदनीय हैं जो भगवत्कथा के सुधारस का पान करते हैं। नारदजी! जो जागृत, स्वप्न तथा आनन्द आदि सभी अवस्थाओं तथा हृदय में विराजमान हैं; उन्हीं भगवान् का तुम निरंतर भजन करो। जिनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के गुण विद्यमान हैं; उन्हीं से भगवान् संतुष्ट होते हैं। जो सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति दयाभाव रखता है और संतजनों तथा वृद्धजनों के आदर-सत्कार में तत्पर रहता है; उस पर जगदीश्वर प्रसन्न होते हैं। जो काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद्-मत्सर से रहित होकर देवाराधन किया करते हैं और साधु-महात्माओं का संग करते हैं; उन पर भगवान् हर्षित रहते हैं।

महाज्ञानी श्रीसनकजी कहते हैं- मुनिश्रेष्ठ! मनुष्यजन्म अत्यन्त दुर्लभ है। जीवों को कोटिसहस्र जन्मों तक स्थावर, जंगम आदि योनियों में भटकने के बाद मानव शरीर मिलता है। मनुष्यजन्म में भी देवराधनबुद्धि, दानबुद्धि और योगसाधना की बुद्धि का प्राप्त होना पूर्वजन्म की तपस्या का फल है। जो देवदुर्लभ मानवदेह प्राप्त करके भी भगवान् का स्मरण नहीं करता, वह जड़बुद्धि और आत्महत्यारा है। जिस प्रकार स्थावर-जंगम जगत् आकाश से व्याप्त है, उसी प्रकार इस चराचर विश्व को भगवान् ने व्याप्त कर रखा है। उनके भजन-सुमिरन से जन्म और मृत्यु दोनों का नाश हो जाता है। उनके नाम का उच्चारण करने मात्र से समस्त आधियों, व्याधियों और महापातकों का समूल विनाश हो जाता है और जीवात्मा को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। यह बड़े विस्मय की बात है कि भगवान् के नाम के रहते हुए भी लोग जन्म-मृत्युरूप संसार में चक्कर काटने को विवश होते हैं। मनुष्य का धैर्य कितना अद्भुत,

विचित्र और आश्चर्यजनक है कि परमेश्वर के होते हुए भी वह मद से उन्मत्त होकर उनका भजन नहीं करता और दुःख व क्लेश भोगता रहता है।

परमभक्त सनकजी कहते हैं- नारदजी! हाथ उठाकर यह सत्य बात बार-बार दोहरायी जाती है कि पाखण्डपूर्ण आचरण का परित्याग करके मनुष्य भगवान् की भक्ति में लग जाए- (नारदपुराण 34/53)। सबका धारण-पोषण करने वाले भगवान् की आराधना किए बिना मनुष्य भवसागर के पार नहीं हो सकता। अच्युत, आनन्द,गोविन्द-इन नामों के उच्चारणरूप, औषध से सब रोग नष्ट हो जाते हैं- यह मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ- (ना. पु. 34/61)

नारदगुरु सनकजी आगे कहते हैं- देवर्षे! जो लोग भगवान् के नाम का नित्य उच्चारण किया करते हैं, वे सर्वत्र वंदनीय हैं। दुष्टचित्त वाले मनुष्य की कितनी भारी मूर्खता है कि वह अपने हृदय में विराजमान सर्वेश्वर को नहीं जानता। मैं बार-बार दोहराता हूँ कि भगवान श्रीहरि श्रद्धालुजनों पर ही संतुष्ट होते हैं, अधिक धन और बंधु-बांधवों पर नहीं। इहलोक ओर परलोक में सुख चाहने वाला मनुष्य सदा श्रीहरि की आराधना करे। जो देवाधिदेव भगवान् जनार्दन की भक्ति से रहित है, ऐसे मनुष्य के जन्म को धिक्कार है। जो मानवतन भगवान् को नमस्कार नहीं करता, उसे पाप की खान समझना चाहिए। जो सुपात्र को दान न देकर द्रव्य का संचय करता है, वह लोक में चोरी से रखे हुए धन की भाँति निंदनीय है। संसारी मनुष्य विद्युत् के समान चंचल धन-सम्पत्ति से मतवाले हो रहे हैं। स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है- **यदि हम खुद में और अन्य जीवों में ईश्वर को नहीं देखते तो हम ईश्वर को और कहाँ पा सकते हैं ?** भगवान् का सच्चा भक्त तो समस्त जीवों में भगवान् के दर्शन करके हर्षित होता है। संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में कहते हैं-

**सिया राममय सब जग जानि।**
**करहूँ प्रणाम जोरि जुग पानि।।**

नारदपुराण में सृष्टि दो प्रकार की बताई गई है-दैवी और आसुरीसृष्टि। जहां भगवान् की भक्ति और सदाचार है, वह दैवीसृष्टि है और जो भक्ति और सदाचार से हीन है, वह आसुरीसृष्टि है। ब्रह्माजी के मानसपुत्र श्रीसनक जी कहते हैं- विप्रवर! भगवान् के भजन-सुमिरन में लगे हुए मनुष्य श्रेष्ठ और उच्च लोकों को प्राप्त करनेवाले होते हैं। क्योंकि भक्ति अत्यन्त दुर्लभ और भगवान् को अतिशय प्रिय है, इसलिए वह उत्तम फल प्रदान करने वाली

होती है। जो ईर्ष्या और द्वेष से रहित है, नित्य भगवद्भजनपरायण है तथा काम आदि दोषों से दूर है, उस पर भगवान् सदा संतुष्ट रहते हैं। महापुरुषों का कहना है कि मानवशरीर की नश्वरता और क्षणभंगुरता पर विचार करते हुए मनुष्य को प्रतिश्वास भगवान् का सुमिरन करते रहना चाहिए। संतप्रवर कबीर साहिब जी का कथन है–

**श्वास–श्वास सुमिरन करो,**
**वृथा श्वास न खोय।**
**न जाने का अन्त का,**
**यही श्वास ही होय।।**

भगवान् के प्रति मन और बुद्धि का समर्पण ही भक्ति है। उसकी महिमा अपरम्पार है क्योंकि भक्ति ही एकमात्र साधन है जो जीवात्मा को साध्य के द्वार तक ले जाती है।

4/114, एस.एफ.एस., अग्रवाल फार्म, मानसरोवर,
जयपुर– 302020।

# श्रीमद्‌भगवद्‌गीता तथा भक्तियोग

– डॉ० करुणा अरोडा

सर्वशास्त्रमयी श्रीमद्‌भगवद्‌गीता हमारे समक्ष केवल ब्रह्मविद्या ही प्रस्तुत नहीं करती अपितु एक प्रकार का योगशास्त्र भी प्रस्तुत करती है, जो विशाल, लचकीला और अनेक पहलुओं वाला है। इसमें आत्मा के विकास और ब्रह्म तक पहुंचने के विविध दौर सम्मिलित हैं। विभिन्न प्रकार के योग उस आन्तरिक अनुशासन के विशिष्ट प्रयोग हैं, जो आत्मा की स्वतन्त्रता और एकता को एक नये ज्ञान और मनुष्य जाति को एक नये अर्थ तक ले जाते हैं। इस अनुशासन से संबद्ध प्रत्येक वस्तु योग कहलाती है। शास्त्रों में भगवद्‌प्राप्ति के लिए जिस मार्गत्रयी की चर्चा मिलती है उनमें से प्रत्येक के साथ योग शब्द जुड़ा हुआ है। जैसे ज्ञानयोग या ज्ञान का मार्ग, कर्मयोग या कर्म का मार्ग तथा भक्तियोग या भक्ति का मार्ग। योग शब्द का सरल अर्थ है–जोड़ना अर्थात् वह प्रक्रिया जो जीव को ईश्वर से मिलाती है – योग है। ज्ञानयोगी, कर्मयोगी और भक्तियोगी सभी भगवद्‌कृपा की अपेक्षा रखते हैं क्योंकि प्रभुकृपा के बिना मनुष्य अपने जीवन का परम लक्ष्य नहीं पा सकता और प्रभुकृपा तो प्रभुभक्ति द्वारा ही संभव है।

फल की अपेक्षा न रखकर भगवान् की जो सेवा की जाती है उसे भक्ति कहते हैं। भक्त शिरोमणि नारद जी अपने भक्तिसूत्र में इसी को सिद्धावस्था में 'परमप्रेमरूपा' और 'अमृतस्वरूपा' कहकर भक्ति की परिभाषा इस प्रकार करते हैं – **'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च'**।[1] भक्त अनासक्त और निर्लिप्त भाव से जीवन में सारे कर्म केवल कर्तव्य की प्रेरणा से भगवद्–सेवा समझ कर करते हैं। गीता में अपने अपने स्थान पर कर्म, उपासना और ज्ञान–तीनों का विशद और व्यापक वर्णन उपलब्ध होता है। जैसे वेद परमात्मा का निःश्वास है, उसी प्रकार गीता भी साक्षात् भगवान् के वचन होने से भगवद्‌स्वरूपा ही है। अतःएव भगवान् की

1. नारदभक्ति सूत्र ; 1.2–3

भांति गीता का स्वरूप भी भक्तों को अपनी भावना के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से भासता है। कृपासिन्धु भगवान् ने अपने प्रिय सखा भक्त अर्जुन को निमित्त बनाकर संपूर्ण विश्व के कल्याण हेतु अमूल्य गीताशास्त्र का उपदेश दिया है।

गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों सिद्धांतों की ही अपनी-अपनी जगह प्रधानता है तथापि यह कहा जा सकता है कि गीता एक भक्तिप्रधान ग्रंथ है। इसमें ऐसा कोई अध्याय नहीं, जिसमें भक्ति का कोई प्रसंग न हो। गीता का प्रारंभ और पर्यवसान भक्ति में ही है। आरंभ में अर्जुन 'शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'[2] कहकर भगवान् की शरण ग्रहण करता है और अंत में भगवान् 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'[3] कहकर शरणागति का ही पूर्ण समर्थन करते हैं। प्रभु समस्त धर्मों का आश्रय सर्वथा त्यागकर केवल भगवदाश्रय लेने की आज्ञा देते हैं। यह मानी हुई बात है कि शरणागति भक्ति का ही एक स्वरूप है। अवश्य ही गीता की भक्ति अविवेकपूर्वक की हुई अंधभक्ति या अज्ञान प्रेरित आलस्यमय कर्मत्याग रूप जड़ता नहीं है। गीता की भक्ति पूर्ण पुरुष परमात्मा की पूर्णता के समीप पहुंचे हुए साधक द्वारा की जाती है। वस्तुतः भक्ति को छोड़कर प्रभु तक पहुंचने का कोई दूसरा सरल मार्ग नहीं है। गीता में भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि 'जो मेरे परायण रहने वाले भक्तजन संपूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण करके मुझ सगुण रूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्तियोग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं और मुझमें जिनका चित्त पिरोया हुआ है उन्हें मृत्युरूपी सागर से मैं झटपट पार लगा देता हूं।'[4]

गीता की भक्ति में पाप के लिए कोई स्थान नहीं है। वास्तव में भगवान् का शरणागत अनन्य भक्त सब तरफ सब में सर्वदा भगवान् को देखता है। वह सब ज़गत् को परमात्मा का स्वरूप समझकर सब की सेवा करना अपना कर्तव्य समझता है। भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं 'हे अर्जुन, तू प्रतिपल मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किए हुए मन, बुद्धि से युक्त होकर तू निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगा।'[5] भगवान् के स्वरूप में स्थित होकर भगवान् की आज्ञा मानकर भगवान् के लिए मन, वाणी और शरीर से स्ववर्णानुसार समस्त कर्मों का आचरण करना ही भगवान् की भक्ति है और इसी से परम

2. गीता, 2.7
3. गीता, 18.66
4. गीता, 12.6-7
5. गीता, 8.7

सिद्धिरूप मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। भगवान् स्वयं घोषणा करते हैं कि – 'जिस परमेश्वर से संपूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिस से यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।[6] भगवान् ने भक्त को भगवत्प्राप्ति के लिए लोकसंग्रह की भावना और अनासक्तभाव से भक्ति करने का उपदेश देते हुए कहा है कि 'जो न कभी हर्षित होता है, न कभी द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सभी कर्मों का त्यागी है – वह भक्तियुक्त पुरुष मुझे प्रिय है।[7]

गीता के अनुसार वेद, यज्ञ, तप और दानादि के करने से जो पुण्यफल संचित होता है, उसका अतिक्रमण कर योगी सनातन परमपद को प्राप्त करता है।[8] भगवद्गीता में भक्ति का स्थान सर्वोच्च है। भगवत्कृपा की अभिव्यक्ति जैसी सुगमता से भक्ति द्वारा होती है, वैसी तप, योग, ज्ञान और कर्मादि किसी भी साधन द्वारा नहीं हो सकती। भगवभक्तों को जीवननिर्वाह के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती। परमपिता परमेश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। वह भक्तों की विशेषरूप से रक्षा करता है। गीता के नवम अध्याय में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि 'जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर स्मरण करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य – निरन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूं।[9] जो भक्तजन मुझे श्रद्धापूर्वक पत्र, पुष्प, फल और जलादि अर्पण करते हैं, उन शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तों द्वारा प्रेमपूर्वक अर्पण किये हुए पत्र – पुष्पादि को मैं सगुणरूप से प्रकट होकर प्रेमसहित खाता हूँ।[10]

भगवद्गीता में प्रभु की कृपा का समुद्र निरन्तर उद्वेलित हो रहा है। अर्जुन को जिज्ञासु भक्तों का प्रतीक मानना चाहिए। क्योंकि उसकी शंकाओं में वस्तुतः संपूर्ण मानवजाति की शंकायें अंतर्निहित हैं। भगवान् ने कृपापूर्वक जो उपदेश अपने सखा और भक्त अर्जुन को दिये हैं, वे संपूर्ण मानवजाति के लिए शाश्वत उपयोगी हैं। अनन्य शरणागति के भाव से स्वयं को प्रभु के समक्ष दीनभाव से समर्पित करना गीताशास्त्र का सिद्धांत है। गीता में वर्णित इस भक्तियोग को लेकर इस उपदेश के अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिए – यही इस पवित्र ग्रन्थ का मुख्य सार है इस पर

6. गीता, 18.46
7. वही, 12.17
8. वही, 8.28
9. वही, 9.22
10. वही, 9.26

चलकर मानवजाति अपने गन्तव्य को सुगमतापूर्वक प्राप्त कर सकती है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'जो पुरुष मुझ से परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीता-शास्त्र को मेरे भक्तों से कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा-इसमें कोई संदेह नहीं है।[11]

निष्कर्षतया यह कहा जा सकता है कि जो भक्त अर्जुन की भांति भगवान् श्री कृष्ण की पूर्ण शरण में अपने को सौंप देता है भगवान् स्वयं उसके जीवन की नौका बनकर सदैव उसके कर्मों में तो उसके सहायक बनते ही हैं, साथ ही साथ उसे जीवन का परम गन्तव्य (मोक्ष) भी प्रदान करते हैं।[12]

**एसोसियेट प्रोफैसर,**
**ए. एस. कॉलेज फॉर विमैन, खन्ना।**

---

11. गीता, 18.68
12. वही, 18.71

# श्रीमद्भगवद्गीता तथा भक्तियोग

– प्रो. आलोक सी. वाघेला

संस्कृत साहित्य में गीता, उपनिषद् और वेदान्त प्रस्थानत्रयी के रूप में जाने जाते हैं। गीता महर्षि वेदव्यास की अद्‌भुत रचना है, यह अलग से कोई पृथक् ग्रंथ नहीं है अपितु महाभारत के भीष्मपर्व के १५वें अध्याय से लेकर ५२ अध्याय पर्यंत २८ अध्यायों का संकलन है, इस ग्रंथ में अर्जुन और श्रीकृष्ण के संवाद के रूप में मानव मस्तिष्क में उठने वाली अनेक समस्याओं और उनके समाधान का व्यावहारिक चित्रण दिया गया है। जिसकी हजारों वर्षों पहले भी आवश्यकता थी, आज भी है और आगे भी रहेगी इसीलिये यह ग्रंथ सर्वाधिक प्रिय है।

गीता का बारहवाँ अध्याय भक्तियोग के नाम से जाना जाता है। इस अध्याय में बीस श्लोक हैं, एक से बारह श्लोक में भगवान् की प्राप्ति के उपाय तथा तेरह से लेकर बीसवें श्लोक तक भक्ति करने वाले ईश्वर के भक्तों के लक्षणों का वर्णन किया गया है, इसमें बताया है कि पहले ईश्बर के बाह्य स्वरूप को देखकर उसका गुणगान करना और इसके बाद उसके सर्वव्यापक अव्यक्त रूप को अनुभव करना चाहिए। पहले निराकार ईश्वर की भक्ति के लिए ईश्वर के विश्वरूप को देखना चाहिए, उसकी भक्ति करनी चाहिए। ईश्वर के व्यक्त रूप की उपासना करने वाले के लिये प्रथम आवश्यक है कि वह अपने मन को ईश्वर के ध्यान में लगावे, अपने मन को लक्ष्य के भीतर प्रवेश करावे, दूसरी आवश्यक बात यह है कि भक्त ईश्वर की भक्ति करते हुए उसमें तल्लीन हो जाये, किन्तु उसमें तल्लीनता क्षणिक नहीं, अपितु स्थायी होनी चाहिये, इसी को "नित्य युक्त" शब्द के द्वारा कहा गया है। ईश्वर की उपासना के लिये साकार-भक्ति के लिये परम श्रद्धा का होना भी आवश्यक है, इसे "परम श्रद्धया" के द्वारा कहा गया है, परमश्रद्धा का तात्पर्य अन्धश्रद्धा नहीं है। इसी तरह ईश्वर की विभूति अर्थात् उसके विश्वरूप की भक्ति के

लिये उसका मन से ध्यान करे, अनुभव करे, अनुभव श्रद्धापूर्वक निरन्तर करे- ये उपाय है।

निराकार ईश्वर की उपासना के लिये पहली आवश्यकता है, इन्द्रियों पर संयम करना, जिसे ''संनियम्येन्द्रियग्रामम्'' के द्वारा बताया गया है। सांसारिक बाह्य विषयों में मन इन्द्रियों के साथ जब तक भटकता रहेगा, तब तक निराकार ईश्वर की उपासना नहीं हो सकती है। दूसरी आवश्यक शर्त भक्त के लिये यह है कि संपूर्ण विश्व में ईश्वर समाया हुआ है, विद्यमान है, सर्वत्र व्यापक है, इसीलिये सभी प्राणियों में समबुद्धि रखना, छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर, मूर्ख-विद्वान् इन सारे भेदों को भुलाकर सभी में एक ही जैसा आत्मतत्व है, यह अनुभव भक्त के लिये आवश्यक है, इसीलिये गीता में अन्यत्र कहा है कि- चाहे ब्राह्मण हो, चाहे चाण्डाल हो, या कुत्ता सभी में पण्डित लोग समानता देखते हैं।

अव्यक्त उपासक के लिये तीसरी आवश्यक शर्त का उल्लेख करते हुए गीताकार लिखता है कि ''प्राणिमात्र के कल्याण के लिये जो लगा है, वहीं निर्गुण-निराकार, सर्वव्यापक अव्यक्त ईश्वर की उपासना करने में सफल हो सकता है, इस प्रकार दोनों प्रकार के भक्तों में तीन-तीन गुण होने चाहिये।

बारहवें अध्याय के अन्तिम आठ श्लोकों में ईश्वर के प्रिय भक्त के लक्षण बताये गये हैं। अर्थात् भगवान् की भक्ति करने वाले भक्त के जीवन में क्या विशेषतायें होती हैं, उसमें क्या गुण होते हैं यह वर्णन किया गया है। जैसा कि लिखा है कि जो व्यक्ति किसी प्राणी से द्वेष नहीं करता है, क्योंकि द्वेष करने वाला व्यक्ति मानसिक दृष्टि से अशान्त रहता है और अशान्त मानसिक स्थिति वाला व्यक्ति भगवान् की भक्ति करने में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है इसीलिए भगवान् के भक्त के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने चित्त से ईर्ष्या और द्वेष को निकाले। अगले गुण की चर्चा करते हुए लिखा है कि जो सबका मित्र हो, जो ममता और अहंकार से रहित है, क्षमावान् है, सदा सन्तोषी है, योगयुक्त है अपने को वश में रखता है, जिसका निश्चय दृढ़ है, जिसने अपने मन और बुद्धि को मुझे अर्थात् ईश्वर को अर्पण कर दिया है, ऐसा प्रभु भक्त भगवान् को प्यारा लगता है। (गीता १२,१३,१४)

जो न हर्ष करता है, न द्वेष करता है, न दुःख मानता है, न आशाएं बांधता है जिसने

भले-बुरे दोनों का परित्याग कर दिया है ऐसा भक्ति करने वाला व्यक्ति मुझे प्यारा है। जो शत्रु और मित्र को सम दृष्टि से देखता है। मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःख में सम रहता है। आसक्ति से जो रहित है। जो निन्दा स्तुति को एक समान समझता है। जो मितभाषी है। जो कुछ मिल जाय उसी से जो सन्तुष्ट रहता है, जिसका कोई नियत स्थान नहीं है, जिसकी बुद्धि स्थिर है ऐसा भक्त मुझे प्यारा है। भक्त का जीवन इन गुणों से युक्त होना चाहिए।

उपरोक्त गुणों वाला भक्त ही भगवान् का प्यारा है, अर्थात् उसे ही भगवान् प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार इन गुणों को देखकर ज्ञात हो सकता है कि कौन व्यक्ति भगवान् की भक्ति करता है और कौन नहीं करता है।

**सरकारी विनयन कॉलेज, झघडीया, जिला भरूच ( गुजरात )।**

# सूरदास की नवधा भक्ति

– डॉ० उमा जैन

विभिन्न शब्दकोशों में 'भक्ति' के अनेक अर्थ दिए गए हैं। जैसे–आराधना, सेवा, भजन, विभाग, विश्वास, आश्रित होना, आराध्य देवता का नाम जपना, बारम्बार स्मरण करना और ध्यान करना आदि।[1] सामान्यतया किसी व्यक्ति के अपने आराध्यदेव के प्रति स्नेह या आदरभाव को भी भक्ति के अन्तर्गत स्थान दिया जाता है। भक्ति में भक्त अपने इष्ट के प्रति उसी प्रकार तादात्म्य प्राप्त कर लेता है, जिस प्रकार बाणानुसंधान के समय साधक लक्ष्य के प्रति एकनिष्ठ होता है। इष्ट के प्रति ऐसी परानुरक्ति को ही **शाण्डिल्य भक्तिसूत्र** में भक्ति कहा है – 'सा परानुरक्तिरीश्वरे शक्तिः।' इस तन्मयावस्था में भक्त को ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कोई उसे बरबस अपनी ओर खींच रहा है और वह विवश होकर उसके प्रति खिंचा जा रहा है।

भक्ति के महाभाव में निमग्न मीरा भी आजन्म, प्रतिक्षण विह्वल रही । नारद–भक्तिसूत्र १६ में पूजादि में अनुराग को भक्ति कहा है। विष्णुपुराण में कहा गया है कि जिस प्रकार की प्रीति अविवेकी जनों की विभिन्न विषयों में होती है उसी प्रकार की प्रीति जब भगवान् का स्मरण करते हुए व्यक्ति के हृदय में होती है तब उसे 'भक्ति' कहा जाता है।[2] श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहा है 'जो अपना मन और बुद्धि मुझे अर्पित कर देता है वह भक्त मुझे प्रिय है।'[3]

आराध्य के प्रति आराधक का अनुराग ही 'भक्ति' कहलाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'श्रद्धा और प्रेम को भक्ति कहा है।' ईश्वर के दो प्रमुख रूप हैं – निर्गुण और सगुण। भक्ति का सम्बन्ध मुख्यतया ईश्वर के सगुण रूप से ही है, क्योंकि ईश्वर के सगुण रूप की उपासना ही भक्ति है।

महाकवि सूरदास एक उच्चकोटि के भक्त हैं। भक्ति–भावना को व्यक्त करने के लिए ही उन्होंने साधनरूप में कविता को अपनाया है। भक्ति उनका साध्य है और कविता साधन। वे भगवान् की भक्ति को ही अपना सर्वस्व

1. सूर की काव्य साधना – डॉ. गोविन्दराम शर्मा, पृ. १४
2. विष्णुपुराण १/१/१८ 3. गीता १२/१४

मानते हैं 'तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।'

भगवान् की कृपा के बिना मनुष्य का सारा पुरुषार्थ, सारे साधन, सकल उपाय, जन्त्र-मन्त्र आदि व्यर्थ हैं। भगवान् के चाहने पर ही मनुष्य को अपने पुरुषार्थ में सफलता मिल सकती है। इसीलिए सूरदास जी अपनी लघुता वर्णित करते हुए करुणानिधि भगवान् से कृपा की याचना करते हुए कहते हैं – 'प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ।'

भागवतकार ने भक्ति के साधनों को ध्यान में रखते हुए नवधा भक्ति का उल्लेख किया है–

गुण-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन-भक्ति के ये नौ भेद अपने आराध्य देव की सेवा में सम्बद्ध भक्त की विभिन्न क्रियाओं एवं व्यापारों पर आधारित है।[4]

भक्ति के उपर्युक्त नौ भेदों में से श्रवण, कीर्तन और स्मरण इन तीन भेदों का सम्बन्ध मुख्यतया भगवान् के नाम, गुण व माहात्म्य एवं लीलाओं से है। पादसेवा, अर्चन और वन्दन का सम्बन्ध उनके रूप से है और दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन ये तीन भेद भक्त की मानसिक स्थितियों से सम्बद्ध हैं। सूरदास ने नवधाभक्ति को सामान्य रूप से स्वीकार किया है पर दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन में उनकी मनोवृत्ति अधिक रमी है।

भगवान् के नाम, यश, माहात्म्य, गुण और उनकी लीलाओं को श्रद्धापूर्वक सुनना और सुनाना ही 'श्रवण भक्ति' है। भगवान् कृष्ण के माहात्म्य का बखान करते हुए सूरदास कहते हैं –

**रास-रस लीला गाइ सुनाऊं।**

भगवान् के नाम, यश, गुण आदि का तन्मयता के साथ गान ही 'कीर्तन' कहलाता है। भगवद् गुणगान के रूप में कीर्तन-भक्ति की महिमा सूरदास द्वारा अनेक पदों में स्वीकारी गई है –

**जो सुख होत गुपालहिं गाये।**

स्मरण-भक्ति का सम्बन्ध भक्त के हृदय से है। भगवान् के नाम, गुण, माहात्म्य और लीला का सतत् ध्यान करते हुए भगवान् की स्मृति में लीन रहना ही स्मरणभक्ति है। हरदम हरि का स्मरण करते हुए सूरदास जी कहते हैं –

**हरि हरि हरि, सुमरो सब कोई।**
**हरि हरि सुमिरत सब सुख होई।।**

---

4. सूर की काव्य साधना, पृ. १७

सूरसागर में पादसेवा, अर्चन और वन्दन भक्ति के भी अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। श्रद्धापूर्वक भगवान् के चरणों में अपना मन लगाना ही पादसेवा है और भगवान् के स्वरूप अथवा मूर्ति की पूजा ही अर्चनभक्ति है। पुष्टिमार्ग में भगवान् की आठों पहर की सेवा-विधि में अर्चनभक्ति का विशेष महत्त्व रहा है।

भगवान् के माहात्म्य को हृदय में धारण कर उनकी स्तुति करना और उनके समक्ष नतमस्तक होना ही वन्दनभक्ति है। भगवान् के चरण-कमलों की वन्दना करते हुए वे कहते हैं -

**चरणकमल वन्दौ हरिराई।**

भक्ति के उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त सूरदास ने भगवान् के प्रति भक्त के भावों से सम्बद्ध दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन, भक्ति के इन तीन रूपों को विशेष रूप से अपनाया है। इन तीन रूपों के साथ उन्होंने वात्सल्य और माधुर्य भावों को भी अपनी भक्ति में विशेष महत्त्व दिया है।

उनका दास्यभाव, ग्वालबालों के साथ कृष्ण की क्रीड़ाओं के वर्णन में सख्यभाव, कृष्ण की बाल-लीलाओं के चित्रण में है।

सख्यभाव की भक्ति में सूर ने अपने आराध्य कृष्ण को सखा या मित्र के रूप में देखा है। अपने साथी ग्वाल-बालों के साथ कृष्ण के बाल्य और यौवन काल की आमोद-प्रमोदमयी लीलाओं के वर्णन में यह सख्य भक्ति अच्छी तरह मुखरित हुई है। सूरसागर के दशम स्कन्ध में 'सुदामा-दरिद्रभंजन' प्रसंग में सख्य-भक्ति की अभिव्यक्ति सुन्दर ढंग से हुई है-

**दूरिहि ते देखे बलबीर।**
**उठि अकुलाई अनमने लीने**
**मिलत नैन भरि आए नीर।।**

सूरदास का अपने आराध्य के प्रति अनन्य प्रेम है। उसने कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी देवता को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया है। वह तो पुनः पुनः कृष्ण में ही रमता है -

**मेरो मन अनंत कहाँ सुख पावै।**
**जैसे उड़ि जहाज को पंछी,**
**पुनि जहाज पे आवें।**
**सूरदास' प्रभु कामधेनु**
**तजि छेरि कौन दुहावै।।**

सूर के उपास्य देव, भक्तवत्सल, कृपालु एवं अशरण-शरण हैं। जो अपने भक्तों की रक्षा प्रत्येक दशा में करते हैं -

**हम भक्तन के भक्त हमारे।**
**जहँ जहँ भीर परै भक्तन को,**
**तहँ तहँ जाइ छुड़ाऊँ।।**

अपने भक्तों पर कृपा करते हुए भगवान् जाति या कुल का विचार नहीं करते हैं -

**काहू के कुल नाहिं बिचारत।**

सूरदास तो निश्छल हृदय से जीवन की प्रत्येक स्थिति में अपने प्रभु के अनुसरण व सान्निध्य की याचना करते हैं और हर स्थिति में अपने को रखने के लिए तत्पर हैं –

**जैसेहि राखौ तैसेहि रहों।**

स्पष्ट है कि सूरदास एक उच्चकोटि के भक्त थे। भक्ति उनके लिए अन्तःकरण की सच्ची प्रेरणा एवं हृदय की सहज अनुभूति थी। भक्ति उनके लिए साधन नहीं, साध्य है। उनकी भक्ति-पद्धति में निराशा नहीं, निवृत्ति नहीं, जीवन के प्रति सुदृढ़ आस्था है, अनुराग है। भगवान् कृष्ण सूर के आराध्य देव हैं। उनकी भक्ति की प्राप्ति में सारी कामनाओं का अन्त हो जाता है। क्योंकि हरि का भक्त स्वयं हरिस्वरूप हो जाता है।

**अध्यक्षा एवं रीडर, संस्कृत-विभाग,**
**मु.ला.एण्ड जयना. खे. गर्ल्स कॉलिज, सहारनपुर ।**

# भक्ति का माहात्म्य

– डॉ० मोनिका

रामभक्ति एक चिंतामणि रत्न है। यह जिस हृदय में स्थापित हो जाए उस हृदय में दु:ख लेशमात्र भी नहीं रहता। उसके लोक परलोक सुधर जाते हैं। प्रतिदिन श्रद्धा से नाम स्मरण करने से, जप-ध्यान करने से मानसिक बल बढ़ता है व बुद्धि प्रबल एवं तीव्र होती है। मानसिक बल एवं बुद्धिबल के साथ-साथ संकल्पबल भी पुष्ट होता है। नाम के विचार से ही शुभ का संचार होता है, आस्तिकभाव का विस्तार होता है और भवसागर से निस्तार होता है। अशुभ का विनाश हो जाता है और व्यक्ति शुभ के लिए सन्मार्ग की ओर प्रेरित होता है।

भूखे को जैसे रोटी की, प्यासे को पानी की, थके हुए को नींद की और स्वेदसुक्त मनुष्य को ठंडी हवा के झोंके की चाहत बड़ी तीव्र होती है, वैसी ही तीव्र भावना भक्त को प्रभु-मिलन की हो जाए तो प्रभु-मिलन होना सहज हो जाता है। भक्ति से सर्व सुख लाभ होता है। इस पथ के अनुगामी की सारी चिंताएँ दूर हो जाती हैं। सब कुछ प्रभु-चरणों में सौंपने के बाद किसी भी चीज़ के खोने का डर समाप्त हो जाता है। मनुष्य की सोच बदल जाती है। वह अध्यास से मुक्त होने लगता है। वह स्वयं को शरीर से हटा कर आत्मा के स्तर पर ले आता है। सांसारिक पदार्थ उसके लिए अहं नहीं रहते। वह नश्वर संसार की वास्तविकता को पहचान जाता है और वह समझने लग जाता है कि हम अपने साथ न कुछ लेकर आए हैं और न ही कुछ लेकर जाएंगे। खाली हाथ आए थे और खाली हाथ ही चले जाएंगे। हमारे साथ केवल हमारे कर्मों के संस्कार जाएंगे। हमारे माध्यम से किया गया नाम-स्मरण ही अंतिम समय हमारे काम आएगा। हम जितना भी पैसा कमा रहे हैं, यह सब यहीं रह जाएगा; फिर काहे की भाग-दौड़, काहे की आपा-धापी। प्रभु-भक्ति हमारे भीतर से किसी चीज़ को खो जाने के भय को ख़त्म कर देती है।

भक्ति-पथ का सबसे अहं साधन है: 'एकाग्रता'। भक्ति की उपलब्धियों का एकमात्र आधार एकाग्रता ही है। सूर्य रात-दिन अपने तेज की हवि को डालता है। रात-दिन चमकने के बावजूद भी सूर्य का प्रकाश किसी

भी चीज़ को जला नहीं पाता। वह ज्वलनशीलता जो रात-दिन चमकते हुए सूर्य में भी दृष्टिगोचर नहीं होती, वही ज्वलनशीलता सूर्य और कागज़ के मध्य एक छोटा-सा लैंस ले आने पर साक्षात् हो जाती है। कुछ ही पलों में कागज़ धूं-धूं करके जलने लग जाता है। यह सब क्या है? एक विज्ञानवेत्ता की नज़र में यह और कुछ भी नहीं, सिर्फ चंद सूर्य की किरणों का एकत्रीकरण है। यह एकत्रीकरण ही भक्ति-साधना में एकाग्रता के नाम से जाना जाता है। आप कल्पना कीजिए कि यदि सूर्य की चंद किरणों के एकत्रीकरण से कागज़ का एक टुकड़ा जल सकता है तो अपने संपूर्ण शरीर की ऊर्जा के एकत्रीकरण से हम अपने शरीर में कितना अनदेखा परिवर्तन देख सकते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि हम अपने हृष्ट-पुष्ट जीवन में अपने दिमाग का केवल एक तिहाई ही प्रयोग करते हैं। शेष सभी न्यूरॉन मृतक अवस्था में पड़े रहते हैं। साधना के पथ पर चल कर हम अपने दिमाग में पड़े मृतक न्यूरॉन को सबल बनाते हैं। यह तो कल्पनातीत है कि यदि केवल एक तिहाई न्यूरॉन से हम इतनी सुंदर ज़िंदगी जी पाते हैं तो यदि दिमाग के सभी न्यूरॉनज क्रियाशील हो जाएं तो हमारी सोच और जीवन शैली बहुत बदल जाएगी। वह जादुई करिश्मे जिन्हें हम केवल देवताओं को ही करते हुए महसूस करते हैं या सिर्फ सुनते हैं,आम हो जाएंगे। हमारी सारी मिथ्या धारणाएँ स्वयमेव ही जल कर भस्म हो जाएंगी।

यदि हम अपने साधना के आसन पर ध्यान दें तो हम महसूस करेंगे कि ये आसन, ये मुद्राएँ साधक के शरीर से निःसृत हो रही ऊर्जा का संरक्षण करते हैं। सर्वप्रथम साधना में बैठने के लिए साधक अपनी टाँगों की ऊर्जा को एक विशेष आसन में बांधते हैं, रक्त के माध्यम से उनमें बह रही ऊर्जा पर बांध लगा देते हैं। दूसरा बंध प्राणायाम के माध्यम से साधक-गण उदर पर लगाते हैं। कण्ठ, नयन आदि पर क्रमशः साधक अपनी ऊर्जा को संरक्षित करते हुए अपने समूचे शरीर की ऊर्जा को भृकुटी पर स्थिर करते हैं। इस सारी ऊर्जा के एकत्रीकरण पर वे स्वयं को ऊर्जा से भरा हुआ अनुभव करते हैं। ऊर्जा से पूरित होकर वे परमानंद को प्राप्त होते हैं। उन्हें संगीत के लिए किसी विद्युतीय उपकरण की आवश्यकता नहीं होती। वह अपने ही भीतर अनहद नाद का श्रवण करते हैं और प्रसन्न रहते हैं।

हर कोई जीवन में कामयाबी चाहता है। कामयाबी किसी एक घटना की परिणति नहीं है, अपितु यह कुछ सुखद घटनाओं का क्रमबद्ध क्रमण है। कामयाबी एक मंज़िल नहीं है, एक यात्रा है। बहुतायत में ज़रूरत से

अधिक धन कमा लेना कामयाबी का मंजर नहीं है। अच्छी सेहत, अपने भीतर उत्साह और उमंग, सुखद रिश्ते, सृजनात्मक सोच, स्थिर मनोवैज्ञानिक सोच, उचित जीवन शैली और मानसिक शांति भी सफलता के सोपान हैं। इन सभी कामयाबियों को गिनते-गिनते तो हम थक जाएंगे, कम शब्दों में कहो तो यही कि आत्मिक खुशी ही जीवन का चरम लक्ष्य है। यह आत्मिक शांति किसी बाह्य वस्तु या घटना का परिणाम नहीं है, अपितु आंतरिक संतुष्टि का परिणाम है।

भक्तिमार्ग की सबसे बड़ी उपलब्धि है: 'परमपिता परमात्मा के धाम की प्राप्ति'। परम पिता की प्राप्ति के पश्चात् तो कुछ भी अभीष्ट नहीं रह जाता, किंतु यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है जो कि सहज ही सुलभ नहीं है। जिस प्रकार बहुत ऊँची चोटी की चढ़ाई चढ़ते हुए रास्ते में आने वाले मनोरम दृश्य एवं मंज़िल पर पहुँचने की आशा थकावट के बावजूद भी चढ़ाई के आकर्षण को बनाए रखते हैं उसी प्रकार साधना-सुपथ में मिलने वाली छोटी-बड़ी उपलब्धियाँ साधक को भटकने से बचाए रखती हैं। अंततः यही कहा जा सकता है कि भक्ति-भावना भय की निर्भयता में, विष से अमृत में, असंतोष से संतोष में, दरिद्रता की ऐश्वर्य में परिणति, चिंता की चिंतन में, लोभ की परोपकार में, कामना की संतुष्टि में, क्रोध की शांति में, मोह की वैराग में, अहंकार की सेवा में, निंदा की प्रशंसा में, घृणा की प्रेम में परिणति की सामर्थ्य रखती है।

**हिन्दी विभाग, दयानंद महाविद्यालय, हिसार।**

# श्रीमद्भागवतपुराण में भक्त और भक्ति का स्वरूप

– डॉ० चन्द्रभान अरोड़ा

श्रीमद्भागवतपुराण अष्टादश महापुराणों में से एक श्रेष्ठ पुराण है। समाज में धर्म, भक्ति और प्रेम आदि का प्रचार करने में इस ग्रन्थ का अद्वितीय योगदान रहा है। मुख्यतया यह एक भक्तिप्रधान पुराण है। यह पूर्णतया भक्ति से ही ओत-प्रोत है।

भक्ति एक ऐसा माध्यम है जिससे भक्त भगवान् को प्राप्त कर सकता है। श्रीमद्भागवत महापुराण में भक्ति की महिमा वर्णन करते हुए स्वयं श्रीकृष्ण ने परम भक्त उद्धव से स्पष्टरूप से कहा है– मेरे प्रति बढ़ी हुई भक्ति जिस प्रकार मुझको सहज ही प्राप्त करा सकती है, उस प्रकार न तो योग, न पवित्र ज्ञान, न धर्म, न वेदों का नित्य स्वाध्याय, न तप और न दान ही करा सकता है।[1] भगवान् भक्ति से या दानादि पुण्य सुकर्म से सन्तुष्ट होते हैं, न कि शास्त्रज्ञान से श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण पुनः कह रहे हैं– मैं सन्तों का भी अत्यन्त प्रिय आत्मा हूँ। परन्तु श्रद्धा-सम्पन्न भक्ति से ही मेरी प्राप्ति सुलभ है। भक्ति सभी प्रकार के भक्तों को पवित्र कर देती है।[2] संसार में सबसे श्रेष्ठ प्राणी मनुष्यों में सत्य और दया से युक्त धर्म तथा तपस्या से युक्त विद्या भी हो परन्तु मेरी भक्ति न हो, तो वे धर्म और विद्या उनके अन्तःकरण को पूर्णरूप से पवित्र नहीं कर सकते। मेरे प्रेम से जब तक शरीर पुलकित नहीं हो जाता, हृदय द्रवित नहीं हो उठता, आनन्द के आँसुओं की झड़ी नहीं लग जाती, तब तक मेरी ऐसी भक्ति बिना अन्तःकरण कैसे शुद्ध हो सकता है। शुद्ध भक्ति के आवेश में जिसकी वाणी गद्‌गद् हो गई है, चित्त द्रवित हो गया है, जो कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी संकोच छोड़कर ऊँची आवाज से गाने लगता है और कभी नाच उठता है– ऐसा मेरा परमभक्त स्वयं पवित्र हो, इसमें तो कहना ही क्या, वह तीनों लोकों को पवित्र कर देता है। जिस प्रकार अग्नि से तपाये जाने पर सोना स्वच्छ स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार मेरे भक्तियोग के द्वारा आत्मा भी कर्म, वासना से मुक्त होकर मुझ में लीन हो जाती है।[3]

श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान् को

1. श्रीमद्भागवतपुराण 33.14.20 2. तदेव, 11.14.21 3. तदेव, 11.14.25

अपने वश में करने के लिए भक्त को हमेशा भक्ति के द्वारा उनका नाम-संकीर्तन करना चाहिए क्योंकि भक्ति से भगवान् वश में हो जाते हैं। श्रीमदभागवत में स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं- मैं सर्वथा अपने भक्तों के अधीन हूँ और अस्वतन्त्र की तरह हूँ। मेरे साधु-हृदय भक्तों ने मेरे हृदय को अपने हाथों में कर रखा है। अतः मैं उन भक्तों का सदा ही प्यारा हूँ।[4] श्रीमद्भागवत के अनुसार मनुष्यों का कल्याण आत्मा और अनात्मा के विचार से ही होता है। इससे दुख-सुख दोनों की निवृत्ति हो जाने पर जीव को परम शान्ति प्राप्त हो जाती है। जब चित्त विषयों में आसक्त रहता है, तब जीव का बन्धन होता है और जब ईश्वर में लग जाता है तब मोक्ष हो जाता है। जब मनुष्यों का मन कामादि दोषों से रहित शुद्ध होता है, तब उसे सुख का अनुभव होता है और न दुख का ऐसी अवस्था में वह आत्मा को प्रकृति से परे देखता है और उसका देहाभिमान नष्ट हो जाता है। इसीलिए भगवत्-प्राप्ति के लिए भक्ति से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है।[5]

श्रीमद्भागवत में नौ प्रकार की भक्ति बतलायी गई है, यथा- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।[6]

विष्णु के अनन्य भक्त प्रह्लाद अपने पिता हिरण्यकशिपु से कह रहें हैं, हे पिता जी! भगवान् विष्णु की कथा का श्रवण, उनके गलमय नामों का कीर्तन, उनके स्वरूप का स्मरण, उनकी चरण-सेवा, उनके श्रीविग्रह का पूजन, उनको साष्टांग प्रणाम, उनके दासत्व की भावना, उनमें सखाभाव तथा आत्म-समर्पण-यह नवधा भक्ति मनुष्यों द्वारा यदि भगवान् में की जाय तो मैं इसी को उत्तम अध्ययन मानता हूँ।

उपर्युक्त नवधा-भक्ति से किसने श्रेष्ठता प्राप्त की। उस सम्बन्ध में कहा गया है-

**श्री विष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने।**
**प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।।**
**अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः।**
**सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां फलम्।।**[7]

भगवान् की कथा-श्रवण करने से महाराज परीक्षित, कीर्तन करने में श्री शुकदेव जी, स्मरण करने में प्रह्लाद, चरणसेवा करने में लक्ष्मी, पूजन करने में महाराजा पृथु, अभिवादन करने में अक्रूर दासभाव में पवनपुत्र हनुमान्, सखाभाव में श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन एवं त्रैलोक्यों की सम्पत्ति तथा आत्मसमर्पण करने में राजा बलि प्रसिद्ध हुए हैं।

श्रीमद्भागवतपुराण में भक्त के स्वरूप के

---

4. श्रीमद्भागवत, 9.4.63 5. तदेव, 3.25.19 6. तदेव, 7.5.23
7. तदेव, 10.32.17

विषय में भी वर्णन मिलता है। भागवत के अनुसार भक्तों की दो प्रमुख श्रेणियाँ होती हैं। प्रथम कोटी के भक्त वे होते हैं जो किसी फल की कामना से भगवान् को भजते हैं या स्मरण करते हैं। इन भक्तों के विषय में स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं- उनकी भक्ति वास्तविक भक्ति नहीं है, वह तो एक प्रकार की स्वार्थपरायणता है। दूसरी श्रेणी के भक्त वे हैं, जो बिना किसी फल की इच्छा से अपना सर्वस्व भगवान् को समर्पित कर, सदा प्रभुसेवा ही करना चाहते हैं। इस श्रेणी के भक्त सच्चे भक्त समझे जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्वासा मुनि से अत्यन्त करुणापूर्ण शब्दों में कहा है- हे द्विज! मैं भक्तों के अधीन हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। सहृदय भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय हैं और मेरे हृदय पर उनका पूर्ण अधिकार है। जिन भक्तों ने मुझ को ही अपनी परमगति मान कर सब कुछ त्याग दिया है, उन प्रेमीभक्त शुद्ध मुनिओं और साधुओं के सामने मैं स्वयं अपने को और अपनी पत्नी लक्ष्मी को भी तुच्छ समझता हूँ। मेरे ऐसे अनन्य भक्त केवल मेरी सेवा करना चाहते हैं, उसी में उनकी इच्छा विलीन हुई रहती है। स्वर्गादि की तो बात ही क्या है! जो मेरे भक्त अपने घर, कुटुम्बी, प्राण, धन, इहलोक और परलोक- सबको छोड़कर केवल मेरी शरण में आ गये हैं, भला उन भक्तों को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। जिस प्रकार सती स्त्री अपने पातिव्रत्य से सदाचारी पति को वश में कर लेती है, वैसे ही अपने हृदय को प्रेमबन्धन से बांध रखने वाले वे समदर्शी साधु-पुरुष भक्ति के द्वारा मुझे अपने वश में कर लेते हैं। अधिक क्या कहूँ, वे मेरे प्रेमी साधु पुरुष मेरे हृदय में हैं और मैं उन प्रेमी साधुओं के हृदय में हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं भी उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता।[8] एक प्रसंग में स्वयं श्रीकृष्ण ने यहाँ तक कह दिया है- मैं उन भक्तों के पीछे-पीछे सदा इसलिए भ्रमण करता हूँ कि उनकी चरण-रज से पवित्र हो जाऊँ।[9] इस पवित्र भावना से यह स्पष्ट हो रहा है कि भगवान् सदैव भक्त के अधीन हैं और भक्तों से उनको प्रेम भाव रहता है।

भगवान् और भक्तों का सम्बन्ध अत्यन्त गूढ़ है। अनन्य भक्ति के द्वारा भगवान् को प्राप्त किया जा सकता है। अनन्य भक्ति उसे कहते हैं जिसमें परमात्मा अथवा इष्टदेव के प्रति निरतिशय प्रेम हो। जगत् के पदार्थों के प्रति जो प्रेम होता है, उसे राग कहते हैं। धनादि विषयों के प्रति जो प्रेम है, उसे आसक्ति कहते हैं। परमात्मप्रेम को ही '**भक्ति**' कहते हैं।

संसार में व्यक्ति चाहे महाभिखारी ही हो, परन्तु जिसके हृदय में परमात्मा का प्रेम एवं भगवान् की भक्ति निवास काती है वह

8. श्रीमद्भागवत, 9.4.66, 68
9. तदेव, 11.14.16

महाभाग्यशाली है। भगवान् उस भक्त के हृदय में अपना लोक छोड़कर भक्तिरूपी प्रेम के तार से बँधे हुए भक्त के हृदय में आ बिराजते हैं। यह कैसा निर्मल प्रेम है, जो हृदय को नवनीत के समान कोमल बना देता है। श्रीमद्भागवत का दशम स्कन्ध तो भक्ति से भरपूर है। भगवान् की विविध लीलाओं का अत्यन्त सुमधुर वर्णन होने से उसको पढ़ने-सुनने में बड़ा ही आनन्द आता है। एक साधारण व्यक्ति भी इस ग्रन्थ को पढ़कर तथा इस के अर्थ को समझकर भगवान् का भक्त बन सकता है। यदि सम्पूर्ण रूप से वह भगवान् की शरण में चला जाएगा तो वह अहंभाव को त्याग कर भक्तिमार्ग से उसका समस्त राग-शोक नष्ट हो जाएगा और अन्ततः भक्त परमशान्ति को प्राप्त कर इस संसार से मुक्त हो जाएगा। अतः भक्ति के द्वारा मनुष्य आनन्दस्वरूप भगवान् को प्राप्त करके कृत-कृत्य हो जाता है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि भगवान् में अनन्य प्रेम का नाम ही भक्ति है। प्रेम की पराकाष्ठा ही भक्ति है और प्रेम ही भक्ति का पूर्णरूप है। पुनश्च सर्वसुहृद्, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान् को ही जीवन का सर्वस्व मान कर सच्चे हृदय से जो भक्ति करते हैं, वे ही परम भक्त हैं।

**- प्राणी विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कालेज, होशियारपुर।**

# वैदिक वरुण देवता : भक्ति का मूल स्रोत

– डॉ० टेकचन्द मीणा

वैदिक-साहित्य संसार का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य है। वैदिक वाङ्मय का सम्यक् अनुशीलन करने से यह ज्ञात होता है कि आस्तिक भाव से परमात्मा की उपासना करने वाले आर्यों में भक्ति का मूल तत्त्व विद्यमान था। यद्यपि वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनुरागसूचक 'भक्ति' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है और न ही इस शब्द के द्वारा उपासना का अर्थबोध होता है, तथापि ऋग्वैदिक काल में भज् धातु का प्रयोग विभाजित करना या वितरित करना, नियत करना, भाग लेना तथा साझीदार बनने के अर्थ में हुआ है।[1] इस प्रकार 'भग' शब्द ऋग्वेद में ऐश्वर्य, भाग तथा शुभ भाग के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।[2] ऋग्वेद में कहीं भी भक्ति शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है परन्तु इतना अवश्य है कि भक्ति-भावना के संकेत वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं।

वैदिक देवताओं में वरुण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैश्विक, नैतिक एवं कर्मकाण्डीय व्यवस्था को ऋत कहते हैं और वरुण उस ऋत का देवता है। वरुण को नैतिक व्यवस्था का सम्राट् माना गया है।[3] वरुण देवता से प्रार्थना की गयी है कि वह हमारे तथा पूर्वजों द्वारा किये गये पापों से मुक्त कर दें।[4] वरुण की सत्संगति से पाप का विनाश होता है। भक्त कहता है– हे प्रभो! मैं तुम्हारा सनातन बन्धु हूँ, तुम्हारा प्रिय मित्र हूँ। अब मुझ से थोड़े से अपराध हुए तो क्या तुम मुझे उसके लिये दण्ड दोगे? तुम्हारा भक्त हूँ, मैं तुम्हारी भक्ति अब भी कर रहा हूँ इस लिए थोड़े से पाप होने पर भी मैं तुम्हारा ही मित्र बनकर रहूँ, ऐसा करो।[5]

वरुण को कृपा एवं करुणा का देवता कहा गया है। भक्तजन वरुण के आक्रोश से बचने के लिए उस (वरुण) की स्तुति करते हैं। वरुण को जीवन और मृत्यु का देवता कहा

1. द्र Bhakti-distribution, partition, separation, RV मो.वि.सं.ई.डि. p. 1079
2. द्र., भग, वही.
3. H.D. Griswold, The Religion of the Rigveda, p. 122
4. ऋ., 7.86.5
5. वही. 7.88.6

गया है। यदि उसके पास अस्त्र हैं जिनका प्रयोग वह पापकर्ता के विनाश के लिए करता है, तो उसके पास सहस्र औषधियाँ भी हैं, जिनका प्रयोग वह रोग एवं दु:खों के नाश के लिए करता है। वरुण की कृपा होने से पाप के दण्ड से मुक्ति मिलती है।[6]

वरुण की करुणा, उस (वरुण) के प्रति दास[7] जैसी भक्ति से प्राप्त की जा सकती है क्योंकि उसकी कृपा से ही उसका क्रोध नष्ट होता है और भक्त पुन: वरुण के समक्ष और उसकी व्यवस्था के सामने अपराधशून्य होकर समुपस्थित हो जाता है।[8]

जिस तरह मनुष्य अपने पशुओं की रक्षा करता है, उसी तरह वरुण देव मनुष्यों की रक्षा करते हैं अत: उनकी पूजा-अर्चना करनी चाहिए ताकि उनकी कृपा से हमारे सभी शत्रु नष्ट हो जाएँ।[9]

वरुण सभी भुवनों को धारण करने वाला है, ज्ञानी है। वह अपने ज्ञान से अनेक तरह के रूप धारण करता है। उस की इस महिमा के कारण ही देवतागण उसकी व्यवस्था का अनुगमन करते हैं।[10]

कालिक सर्ववेतृत्व-वरुण की व्यवस्था शाश्वतिकी है। इसमें कभी परिवर्तन नहीं होता है इसी कारण भक्त उससे चमत्कृत होता है। वरुण सर्वव्यापक है और सर्वज्ञ है अपने इन्हीं गुणों के कारण वह सब कुछ जानता है।[11] सभी क्रियमाण पापों को देखता है इसलिए उसकी निरन्तर भक्ति एवं उपासना करनी चाहिए।

दैशिक सर्ववेत्तृत्व-वरुण की सर्वव्यापकता इतनी है कि यदि मनुष्य आकाश में भी चला जाये तब भी वह उससे बच नहीं सकता। उसको आकाश में पक्षियों की गति का ज्ञान है, समुद्र में जहाज के मार्ग का ज्ञान है, वायु के प्रवाह का ज्ञान है, समस्त रहस्यों के रहस्य का ज्ञान है। भूत, वर्तमान, भविष्य, समीप, दूर सब उनके लिए एक जैसे है।[12]

दो व्यक्तियों की वार्ता के बीच में भी वह निरन्तर तृतीय वरुण रहता है।[13] वही मनुष्य के सत्य एवं मिथ्या आचारों का सर्वेक्षण करता रहता है।[14] कोई भी प्राणी उनकी इच्छा के बिना श्वास नहीं लेता। मनुष्य के चक्षु निमेषों की संख्या कितनी होगी यह भी वरुण देवता निर्धारित करता है।[15]

वरुण की कृपा प्राप्ति के उपाय भी बताये गये हैं-भक्त द्वारा अपने अन्तस् में

---

6. H.D. Griswold, The Religion of the Rigveda P. 125
7. ऋ. 7.86.7
8. वही, 7.86.8
9. वही, 8.41.1
10. वही, 8.41.7
11. ऋ. 1.25.8
12. H.D. Griswold, The Religion of the Rigveda, p. 129
13. अथर्ववेद, 4.16.2
14. ऋ. 7.49.3
15. अथर्ववेद, 4.16.2

प्रच्छन्न दोषों को जानने का प्रयास करना और उन प्रयासों में गम्भीरता का होना, पाप की स्वीकृति, वरुण के दर्शन के लिए लालसा एवं लालायित रहना[16], दण्ड से मुक्ति की प्रार्थना करना, वरुण को आहुतियाँ प्रदान करना और उसकी स्तुति में ऋचा गान करना आदि उपाय बतलाये गये हैं।

ऋग्वेद के वरुणसूक्तों में याज्ञिक आहुतियों पर बल दिया गया है। भक्त द्वारा अपराध स्वीकार किया जाता है। करुणा एवं भावपूर्णता के साथ उस (वरुण) की भक्ति की जाती है। जब पापकर्ता का हृदय परिवर्तन हो जाता है और वह अपने पाप को देख लेता है, तब वरुण उसके समक्ष उपस्थित हो जाते हैं क्योंकि वरुण कृपा आर करुणा के सागर हैं अत: वह क्रन्दन को सुनते हैं।[17]

वरुण अपने उपासकों को सुरक्षा एवं खुशी देता है।[18] वे लोग भाग्यशाली हैं जो वरुण की कृपा का अनुभव करते हैं। वरुण के पास देने के लिए हजार वर हैं। वह वरुण मनुष्य के विचारों को संरक्षण देता है। उसके भय को दूर करता है और अमंगलकारी दु:स्वप्नों से बचाता है।[19]

एच. डी. ग्रिसवॉल्ड ने वेदों में भक्तितत्त्व के बीज रूप में वरुणसूक्तों को माना है। इनके अनुसार परवर्ती काल में जो शिव और विष्णु के प्रति भक्ति दिखलायी देती है उसका पूर्वरूप हमें ऋग्वेद के वरुण सूक्तों में प्राप्त होता है। विशेष रूप से ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 24वें और 25वें सूक्तों में शुन:शेप के द्वारा वरुण के प्रति जो मार्मिक उद्गार व्यक्त किये गये हैं, वे किसी भक्त-हृदय के अभिव्यक्तिस्वरूप ही हो सकते हैं। सबके प्रकाशक, सकल जगत् के उत्पादक एवं रक्षक जगदीश्वर की सर्वदा उपासना करनी चाहिए।[20] जो मनुष्य परमात्मा की इच्छा के अनुरूप सद्आचरण करते हैं, वे ईश्वर द्वारा रक्षित होते हैं और न्यायोचित फल पाते हैं।[21] हे व्ररुण! हम मनुष्य भी अपने प्रमादी स्वभाव के कारण कभी आप के नियमों का उल्लंघन करें, तो आप हमें सामर्थ्य देकर व्रतों के पालनार्थ पुन: कृतसङ्कल्पित बनायें जिससे हम उन नियमों का फिर कभी उल्लंघन न करें।[22] हे वरुण! आप इस पुकार को सुनिये। आप मुझे हर प्रकार से सुखी कीजिये। अपनी रक्षा और समृद्धि के हेतु मैं आपकी स्तुतियों का गान कर रहा हूँ।[23] हे मेधाविन् वरुण! तू इस आकाश, पृथिवी और जगत् पर शासन करता है सब तेरे

16. ऋ.7.86.3-4 17. ऋ.,7.86.2
18. H.D. Griswold, The Religion of the Rigveda p.131
19. ऋ.7.88.1 20. वही 1.24.3 21. वही 1.24.5
22. वही 1.25.1 23. वही 1.25.19

अनुशासन का ही पालन करते हैं हमारी जीवनयात्रा में अनेक विघ्न बाधाएँ हैं इन बाधाओं से बचने के लिए पग-पग पर तेरे संरक्षण की आवश्यकता है। हे रक्षक! जब भी हम तुझे पुकारें, हमारी पुकार को सुनना और हमारी रक्षा करना।[24]

इस प्रकार संक्षेप में लिखा जा सकता है कि वरुण-सम्बद्ध वैदिक मन्त्रों में स्तोतव्य वरुण तथा स्तोता ऋषि का जो स्वरूप प्राप्त होता है, उसमें उत्तरवर्तिनी भक्ति के विकास की सम्पूर्ण कारणसामग्री अपने विशद रूप में परिलक्षित होती है। भक्त जिस प्रकार अपने आराध्य में सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, विभुता, न्यायप्रियता, करुणामयता, कष्टहरर्ता, स्तुतियों के द्वारा सुलभता इत्यादि गुणों की साक्षात् उपस्थिति देखता है वे सभी (गुण) हमें वैदिक वरुण में पर्याप्त स्पष्टयता अनुस्यूत दिखायी देते हैं। इसी प्रकार वहाँ के स्तोता में भी भक्त-सुलभ शरणागति, क्षमाप्रार्थित्व तथा त्राणयाचना इत्यादि वैशिष्ट्य भी सुस्पष्टतया उपलब्ध हैं।

**- सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,**
**दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

---

24. त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि। ऋ. 1.25.20

# संत रविदास जी की भक्ति पद्धति

– डॉ. सुनीला शर्मा

मध्यकालीन भक्ति–धारा के सन्त–कवियों और विचारकों में संत रविदास जी का विशेष स्थान है। रविदास जी अत्यन्त विनम्र स्वभाव वाले, खण्डन–मण्डन की प्रवृत्ति से रहित आदर्श सन्त थे। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर न था। भीतर व बाहर के विरोध से वह घृणा करते थे। उनके जीवन में आत्मविश्वास, सरलता, सहजता व सादगी और सन्तोष की प्रधानता थी–जिस से वह पूर्ण भक्ति को पा पूर्ण भक्त संत के नाम से प्रसिद्ध हुए '' रामानन्द जी के शिष्य तथा रामभक्ति–परम्परा के स्तम्भ अनन्तदास जी ने लिखा है कि अपने बाल्यकाल में ही बालक रविदास नवधा भक्ति में लीन हो गए थे।[1]

साधना के चरम लक्ष्य परमात्मा और आत्मा की एकता के लिए परमेश्वर के गुण रूपादि का प्रेमपूर्वक अनन्य भाव से चिन्तन–मनन करना भक्ति कहलाता है। आत्म–विस्मृत होकर उपास्य देव में अनन्य निष्ठा रखना भक्त का प्रधान तत्व है व उपास्य देव में निष्ठा व उसके प्रति शरणागत की भावना रखते हुए अपने आराध्य के गुण एवं स्वरूप की उपासना ही भक्ति है।

नारदभक्तिसूत्र के अनुसार यह परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा है। जिसे प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है।[2] अत: भक्ति चित्त की वह वृत्ति मानी जाती है जिसे प्राप्त कर सारे कर्म, सारे आचार ईश्वर को अर्पित हो जाते हैं। देवर्षि नारद ने इस अर्पित भावना को, प्रभु के विस्मरण में परम व्याकुलता को ही भक्त का प्रधान गुण माना है।[3] इस भावना को पूर्ण धारण करते हुए संत रविदास जी की धारणा थी कि भक्ति में पूर्ण निष्काम भावना का होना परमावश्यक है। भक्ति ही मनुष्य को मायापाश से मुक्त कराकर आत्मज्ञान द्वारा ब्रह्म से साक्षात्कार कराती है।

1. परशुराम चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग–4, पृ. 143
2. नारदभक्तिसूत्र–17
3. मध्यकालीन हिन्दी संत विचार और साधना, पृ. 366

संत रविदास जी राम-नाम से लौ लगाकर चित्त को अज्ञानावस्था से जगाकर चेतन बनाने पर बल देते हुए कहते हैं कि जिन की लग्न राम से लगी है वही इस संसार-सागर से पार हो सकते हैं। बिना भाव-भक्ति के जन्म-मरण के बन्धनों से छुटकारा नहीं मिल सकता।

संत रविदास जी का मानना है - हर भक्त के हृदय में इस भावना का आर्विभाव अवश्य होता है कि वह जैसा भी है भगवान् का है वह दास्यभाव में अपने अहं एवं अस्तित्व को विनम्र भाव से भगवान् के चरणों में समर्पित कर देता है। इसी दैवी भावना में प्रवाहित होकर ही संत जी अपने आपको चमार कहते हैं। "हम से दीनदयाल तुम से, चरन सरन रैदास चमइया।[4] रविदास जी ने अपने को अवगुणों का आगार और परमात्मा को गुणों की खान कहा है।[5] भक्ति में कभी भक्त की ऐसी स्थिति होती है कि वह भगवान् को पितातुल्य समझने लगता है। ऐसी भक्ति में दैन्यभाव की अपेक्षा ममता की तीव्रता होती हैं। इस भावना से लिप्त सन्त रविदास अपने 'रमइया बाप' से पंचेन्द्रियों के बन्धन से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना करते हैं। अपने प्रभु राम से पिता का सम्बन्ध जोड़ते हुए कहते हैं कि मेरे पिता राम मेरे से अधिक कोई दीन नहीं और आप से बढ़कर कोई दयालु नहीं।[6]

प्रेम की पूर्णता में संन्त रविदास जी कहते हैं कि हे राम यदि तुम मुझ से सम्बन्ध-विच्छेद कर भी लो तो भी मैं तुम्हारा साथ नहीं छोडूंगा। क्योंकि मैंने तो सारे सांसारिक नाते-तोड़ कर एकमात्र तुम्हारे से अपना मन लगाया है।[7] कभी-कभी भाव-विह्वल होकर रविदास जी कह उठते हैं। कि हे राम मुझे दर्शन दीजिए और विलम्ब मत करें क्योंकि आपके दर्शन में ही मेरा जीवन है।"[8] संत जी का मानना है कि भक्त और भगवान् की परस्पर प्रीति ऐसी होनी चाहिए कि दोनों एक- दूसरे की आँखों में आँखें डाल सकें वह कहते हैं -

"मैं आप को देखूं और आप मुझे देखें क्योंकि हमारी प्रीति एक-दूसरे के साथ है। आप सिर्फ मुझे देखें पर आप को कोई दूसरा न देखे आप के प्रेम में मेरी बुद्धि का नाश हो गया है व सुध-बुध खो गई है।[9]

आत्म-समर्पण की भावना में बहते हुए संत रविदास जी अपनी सारी वृत्तियों को एकत्र कर भगवान् को अपना सर्वस्व समर्पण कर देना चाहते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि

4. रैदास की बानी, पृ.41,
5. वही, पृ.39
6. वही, पृ.39
7. वही. पृ.38
8 वही, पृ.38
9. वही, पृ.7

इस प्रकार के एकनिष्ठ-समर्पण से उन्हें हरि से तादात्म्य का अनुभव होता है।[10]

संत रविदास जी ने भावभक्ति पर विशेष बल दिया है। इनकी धारणा है कि बिना साधु-संगति के भाव उत्पन्न नहीं हो सकता और बिना भाव के भक्ति का होना असम्भव है।[11] उनका मानना था कि "जब तक लग नदी न समुद समावै, तब लग बढ़ै हंकारा। जब तन मित्यौं राम सागर सौं, तब यह मिटी पुकारा।"[12]

**भक्ति के भेद**- "श्रीमद्भागवत में भक्ति के चार प्रकार माने गए हैं - सात्विकी, राजसी, तामसी व निर्गुणी।[13] नारदभक्तिसूत्र में ग्यारह भेद माने गये हैं। सब प्रकारों में भक्त को भाव व नामसमर्पण, हरिकीर्तन व आत्म समर्पण का ज्ञान दिया गया है। संत रविदास की भक्ति में हमें यह भाव पूर्णरूप से दिखाई देते हैं। उनका मानना है कि प्रभु नाम स्मरण में बहुत शक्ति है।[14]

वे कहते हैं कि सतयुग में सत्य, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजाचार का आधार था पर कलियुग में केवल नाम का आधार है। संत रविदास जी के अनुसार हरि का नाम अमृत है। यह भवबाधा ग्रसित जीव की एकमात्र औषधि है।[15]

भक्ति की महत्ता के बारे में वह कहते हैं कि "भक्ति के ही कारण सन्त रविदास का उद्धार हो गया। वे धूल से चन्दन बन गए, नीची जाति से ऊँचे हो गये। भक्ति के सिरमौर बन गये।[16]

**- ऐसोसियेट प्रो., हिन्दी विभाग,**
**सरूप रानी राजकीय महिला महाविद्यालय, अमृतसर।**

10. रैदास की वाणी, पृ. 8
11. श्री गुरुग्रन्थ साहिब (राग धनासरी), पृ. 694
12. रैदास की वाणी, पृ. 23,
13. श्रीमद्भागवत - स्कन्ध 3, पृ. 29
14. रैदास की वाणी, पृ. 25,
15. वही, पृ. 42
16. श्री गुरुग्रन्थ साहिब राग गौड-1

# भक्ति की प्राचीन अवधारणा तथा महत्त्व

– डॉ. दलबीर सिंह चाहल

सेवाभावना से युक्त भक्तिशब्द प्रेम, अनुराग, समर्पण आदि अनेक अर्थ को लिए हुए है। भक्ति माता-पिता, स्वामी, गुरु, राष्ट्र, आराध्य देव आदि किसी के प्रति भी हो सकती है, परन्तु प्रमुख तौर पर भक्ति का अभिप्राय प्रभु-भक्ति से ही लिया जाता है। भारतीय चिन्तन-परम्परा में 'भक्ति' को परिभाषित करते समय भी प्रभु-भक्ति-परक पक्ष को ही ध्यान में रखा गया। यथा शाण्डिल्य भक्तिसूत्र में ईश्वर के प्रति परम अनुराग को ही भक्ति कहा गया है।[1]

नारदभक्तिसूत्र के अनुसार ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है[2] तथा उसको अमृतस्वरूप कहा गया है-

भक्तिरसायन ग्रन्थ में भी भक्ति की परिभाषा भगवान् परक ही है। वहाँ कहा गया कि भगवान् की प्राप्ति के लिये यत्नशील मनुष्य के कोमल मन की वृत्ति को निरन्तर भगवान् की ओर प्रवाहित किये रहना भक्ति है।[4] जहां तक भक्ति के उद्‌भव का संबंध है, वैदिक साहित्य में कहीं-कहीं भक्ति के बीज मिल जाते हैं, जैसे अथर्ववेद के इस कथन से स्पष्ट है कि-

हम आप के प्रति भक्ति वाले बनें' में भक्ति का उल्लेख हुआ है।[5]

अथर्ववेद के बाद श्वेताश्वतरोपनिषद् के एक मन्त्र में प्रभु-भक्ति तथा गुरु-भक्ति के प्रति प्रेरणा देते हुए कहा गया कि - जिस की ईश्वर तथा गुरु के प्रति परम भक्ति होती है, उस के अन्दर उपनिषद् के ये गूढ़ अर्थ प्रकाशित हो जाते हैं।[6]

वैदिक साहित्य के बाद तो भक्ति-विषयक चिन्तन बड़े विस्तृत रूप में मिलता है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता तथा पुराण इस सबंधी विशेष उल्लेखनीय हैं।

भक्ति प्रभु को प्रसन्न करने की एक

1. शाण्डिल्यसूत्र, 1.1.1
2. नारदभक्ति सूत्र सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा
3. वही, अमृतस्वरूपा च - 1.3
4. भक्तिरसायन, 1.3
5. अथर्व., 6.79.3
6. श्वे. उप., 6.23

विधि है। इस बारे भागवतपुराण में कहा गया है - इस संसार में केवल दान, तप, यज्ञ, शौच तथा व्रत रख कर भगवान् को प्रसन्न नहीं किया जा सकता। भगवान् तो स्वार्थहीन भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। भक्ति यद्यपि अनेक प्रकार की हो सकती है पर श्रीमद्भागवत-पुराण में 9 प्रकार की भक्ति कही गई है। 'प्रभु का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चना, वन्दना, दास्य, मित्रता तथा आत्म समर्पण' भक्ति के ये 9 प्रकार हैं।[7]

भक्ति कोई नवीन वस्तु नहीं, जो साहित्य उपलब्ध है उसमें कहीं न कहीं भक्त का नाम जरूर आया है। अत: वैदिक काल से आज तक अनेक भक्त हुए हैं जिनमें से कुछ एक प्रमुख भक्तों ने किस विधि की भक्ति अपनाई है इस संबंध में कतिपय नाम इस प्रकार हैं-

प्रभु के श्रवण में परीक्षित, कीर्तन में शुकदेव, स्मरण में प्रह्लाद, पादसेवा में लक्ष्मी, अर्चना में पृथु, वन्दना में अक्रूर, दासता में हनूमान्, मित्रता में अर्जुन तथा आत्मसमर्पण में राजा बलि का नाम उल्लेखनीय है।

भगवान् तो भक्तों से इतने प्रभावित हैं कि वे अपने भक्तों के लिए कहीं भी रह सकते हैं इसीलिए वे अपने प्रिय भक्त नारद से कहते हैं कि - हे नारद! मैं न तो स्वर्ग में रहता हूं तथा न ही योगियों के हृदय में। मैं तो वहां रहता हूं जहां भक्तजन मेरे नाम का कीर्तन करते हैं।

भगवान् के भक्त चाहे निर्धन भी हों, उन्हें धनवान् ही मानना चाहिये। इस विषय में उल्लेख है - भक्त अपने आराध्य की आराधना करता हुआ कभी भी कष्ट का अनुभव नहीं करता, चाहे उसको भक्ति करते-करते कितना ही समय व्यतीत हो जाय। ऐसी स्थिति में एक भक्त अपने मन को समझा रहा है कि हे मन! तू दत्तचित्त होकर भक्ति की ओर लगा रह। तुम्हें लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होगी[8]-

**भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं**
**कथमहमिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम्।**
**सरसिजदृशि देवे तावकी भक्तिरेका**
**नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम्।।**

भक्त यह कभी नहीं सोचता कि मुझे बस अभी भगवान् की प्राप्ति हो जाय वह तो अपने आराध्य की प्राप्ति के लिए एक नहीं अनेक योनियों में भी जाने को सहर्ष तैयार रहता है। तभी तो वह कह रहा है कि - हे प्रभो ! मैं चाहे हजारों योनियों में जाऊं, पर यह सुनिश्चित कर दें कि उन सब योनियों में आप में अटूट भक्ति बनी रहे।[9]

भक्ति एक बार में दृढ़ नहीं होती अपितु क्रमश: ही उसकी धारणा हृदय में दृढ़ होती है। इस दिशा में मुख्यत: भक्ति की स्थूल और सूक्ष्म दो स्थिति बताते हुए कहा गया कि भगवान् की भक्ति के दो पड़ाव होते हैं - स्थूल

7. भागवतपुराण, 7.5. 23 8. मुकुंदमाला, 17 9. विष्णुपुराण, 1. 20. 18

तथा सूक्ष्म। आरम्भ में भक्ति स्थूल रूप होती हैं, फिर आगे आगे सूक्ष्म रूप धारण करती जाती है।[10]

इस से स्पष्ट है कि भक्तों की अवस्था एक जैसी नहीं रहती। अवस्था में बदलाव आता रहता है। इस संबंध में भागवतपुराण का कथन है कि- भक्त कभी तो प्रभु का चिन्तन कर के रोने लग जाते हैं। कभी हंसने लगते हैं। कभी अत्यन्त प्रसन्नता को प्रकट करते हैं। कभी अलौकिक अवस्था में पहुंच कर प्रभु के साथ बातें करने लग जाते हैं। कभी नाचने लगते है। कभी गाना गाते हैं। कभी प्रभु के सार तत्त्व पर विचार करने लग जाते हैं तथा कभी एक दम शान्त हो जाते हैं।[11]

भक्त के लिए यह अवश्यक नहीं है कि वह अपने भगवान् के प्रति बहुत दिखावा करे बस भक्तिभाव से चाहे वह फूल, फल, जल चढ़ा दे यही पर्याप्त है। इस में आवश्यक यह है कि ये वस्तुएं भक्तिभावना से समर्पित की होनी चाहियें, तभी उन्हें स्वीकार किया जायेगा।

वस्तुतः भक्तों की भावना ही और होती है। भक्त तो अपने भगवान् को देखता है। इसी बात को श्रीमद्‌भागवत पुराण में भी स्पष्ट करते हुए लिखा हुआ है कि जो सभी प्राणियों में अपना दैवीअंश देखता है तथा अपने दैवीअंश में सभी प्राणियों को देखता है वह भक्त उत्तम है।[12]

भक्त प्रभु के प्यारे होते हैं परन्तु प्रभु के भक्तों से भी अधिक कोई अन्य प्यारा होता है। इस संबंध में आदिपुराण में कहा गया है - भगवान् कृष्ण का कहना है कि जो मेरे भक्त हैं उन से बढ़कर मेरे उत्तम भक्त वे हैं जो मेरे भक्तों के भक्त हैं। यही कारण है कि भक्त अपने मन तथा वचन को तो प्रभु के प्रति परन्तु अपने शरीर को प्रभु के भक्तों के प्रति समर्पित रखता हुआ कहता है कि- हे प्रभु! मेरी चित्तवृत्ति आपके चरणकमलों में लगी रहे। मेरे बोलों में आपका नाम कीर्तन हो। मेरे हाथ आप के भक्तों की सेवा करते रहें तथा आप मेरे अंग-संग बने रहें।[13]

सभी शास्त्र तथा पुराण आदि से स्पष्ट है कि सेवा, श्रद्धा, समर्पण आदि अर्थों का बोधक भक्ति शब्द प्राचीनकाल से ही भगवान् के प्रति केन्द्रित रहा है। भगवान् की प्रसन्नता प्राप्त करने के बिन्दु से ९ पगडंडियां निकलती हैं। उन सब की मंजिल भगवान् की प्राप्ति है। भगवान् की प्राप्ति के लिये न तो कोई विशेष योग्यता बताई गई है, न धन-दौलत न कोई विशेष घड़ी-पल। केवल स्वार्थहीन समर्पण-भावना का होना ही भक्त के लिए आवश्यक बताया गया है।

**- संस्कृत विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।**

10. प्रबोधसुधाकर, 171 11. भागवतपुराण,11.332 12. वही, 11.2.45
13. भागवतपुराण 4.1.91

# वेदों में वर्णित भक्ति-तत्त्व

— श्री शम्मी कुमार

वेद पुस्तक न होकर ईश्वरीय ज्ञान हैं। सृष्टि के आदिग्रन्थ वेद ही हैं। ऋषियों ने उस वेदरूपी ज्ञान के दर्शन किये हैं। इस विश्व का ज्ञान कराने वाला शब्दरूपी ब्रह्म वेद ही है। वेद का अर्थ ज्ञान है, अतः वेद सारे ज्ञान का राशिपुञ्ज है। मानवजीवन का परम लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति करना है और पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का सम्पूर्ण ज्ञान वेदों में निहित है। उसमें भी मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का परम लक्ष्य है, तथा उसे प्राप्त करने के लिए परमेश्वर की भक्ति आवश्यक है "भक्ति हृदय की उस भावना का नाम है, जिसमें साधक जहाँ एक ओर पूर्णभाव से ब्रह्म में अनुरक्त हो और सर्वतोभावेन अपने को ब्रह्मार्पण करने वाला हो। 'भक्ति' का लक्षण शास्त्रों में इस प्रकार किया गया है कि परमेश्वर में अविचल और एकान्तिक भावना तथा आत्मसमर्पण की 'उत्कट आकांक्षा' 'भक्ति' है।[1] वस्तुतः वेद भक्ति के आदिस्रोत हैं। ईश्वर-भक्ति के सुगन्धित पुष्प वेद के प्रत्येक मंत्र में विराजमान हैं, जो अपनी सुगन्ध से स्वाध्यायशील व्यक्तियों के हृदयों को सुवासित कर देते हैं। जीवात्मा को प्रेरित करती हुई ऋचा कहती है कि- प्रभु के अतिरिक्त तू अन्य किसी की स्तुति मत कर। भगवद्विरुद्ध किसी प्राणी, पदार्थ तथा परिस्थिति को हृदय में महत्व मत दे, क्योंकि ऐसा करने से तू परमार्थ से भ्रष्ट हो जाएगा।[2] प्रभु ही एक-मात्र अपने हैं अन्य सब पराये हैं, ऋचा में स्पष्ट वर्णित है- कि प्रभु अपने हैं, वह हमारे पिता, भ्राता और सखा हैं।[3] व्यक्ति अपने लिए क्या नहीं करता? पिता पुत्र के लिए, सखा सखा के लिए सहोदर भ्राता के लिए अपने प्राण तक न्योछावर कर देने के लिए तैयार हो जाता है, यह लौकिक अनुभूति है। पारलौकिक अनुभूति तो पारमार्थिकी है,

1. सा परानुरक्तिरीश्वरे, शाण्डिल्यसूत्र 1. 1.1
2. ऋक् 8.1.1, अथर्व.20.85.1
3. ऋ. 1. 26. 3

विशुद्ध सत्याधारित है। वह परमात्मा अपने भक्त के लिए असम्भव को भी सम्भव कर देते हैं। भक्ति सर्वव्यापक है। जैसे सृष्टि परमात्मा से प्रारम्भ होकर परमात्मा में ही लीन हो जाती है। उसी प्रकार सब साधना का प्रारम्भ भी भक्ति है और लक्ष्य भी भक्ति ही है। भक्ति का सब कोई अधिकारी इसलिये है कि भक्ति जीव का स्वरूप और धर्म है और ईश्वर पर निर्भर होना जीवात्मा का स्वभाव है जो भक्ति का बीज है। नास्तिक भी, जिसने जन्मभर ईश्वर का खण्डन किया है, यदि अकस्मात् घोर विपत्ति में पड़ता है तो ईश्वर की सहायता के लिये प्रार्थना करने लगता है, इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर के सम्बन्ध का ज्ञान जीवात्मा के अभ्यन्तर में अवश्य वर्तमान रहता है। इस प्रकार जीव में सकाम भक्ति का प्रारम्भ हो जाता है। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि चार प्रकार के पुण्यशील व्यक्ति ही परमात्मा की उपासना करते हैं उनमें या तो कोई दु:खी होता है या कोई वास्तविकता को जानने की इच्छा वाला या धन चाहने वाला या ज्ञानी बस ये परमात्मा का भजन करते हैं।[4] वेद में 'भक्ति' और 'शक्ति' का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। वेद में 'भक्त' प्रभु को तेज, वीर्य (शक्ति) बल, ओज और सहनशक्ति का भंडार मानता हुआ, उससे तेज, वीर्य (शक्ति) बल और सहनशक्ति की कामना करता है। सृष्टि का जीव प्रभु से कामना करता है-

**दृते दृंह मा मित्रस्य मा,**
**चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।**
**मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे,**
**मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।**[5]

जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान का स्वामी है। विश्व या आकाश में व्याप्त होकर त्रिकाल का स्वामी है, निर्विकार है, आनन्दकन्द है, कैवल्यरूप सुखधाम है, उस महान् परमेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ, जिस प्रभु की महिमा का गान यह सम्पूर्ण प्रकृति कर रही है-

**यस्येमे हिमवन्तो महित्वा,**
**यस्य समुद्रँ रसया सहाहुः।**
**यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू,**
**कस्मै देवाय हविषा विधेम।।**[6]

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि मनुष्य का तो कहना ही क्या? भक्ति के अधिकारी तो पशु, पक्षी आदि भी हैं-

**केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।**
**येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा।।**[7]

प्रभु की महिमा महान् है। अणु-अणु में उसको

---

4. श्रीमद्भगवद्गीता 7.16
5. यजुर्वेद 36. 18
6. वही, 25.12
7. श्रीमद्भागवत 11.12. 8

सत्ता विद्यमान है। ऋषि कहता है कि - हे मनुष्य! यदि तू दुःखों से छूटना चाहता है, तो तू उस सर्वव्यापक परमात्मा की भक्ति करके परमतत्व को प्राप्त कर, जिसकी महिमा का वर्णन सकल ब्रह्माण्ड कर रहा है।

इस प्रकार से वेदों में वर्णित भक्ति-तत्त्व प्रचुर मात्रा में अनेक स्थलों पर अंकित है। सफल जीवन के लिए वेदों में हमारी श्रद्धा, वेदों के स्वाध्याय की ओर प्रवृत्ति और वेदों की रक्षा परमावश्यक है। वेदों के प्रचार और प्रसार से ही हमारे देश तथा विश्व का कल्याण सम्भव है।

**- शोधछात्र, वी.वी.बी. आई. एस. एण्ड आई. एस,**
**( पं.वि ) साधु आश्रम, होश्यारपुर ।**

# ज्ञान से भक्ति श्रेष्ठ

— कु. साक्षी

ईश्वर के प्रति अनन्त प्रेम ही भक्ति है। वैदिक वाङ्मय से लेकर आधुनिक भक्तिकाल तक भक्ति का विभिन्न परिभाषाओं में वर्णन किया गया है। भक्ति का शाब्दिक अर्थ चिन्तन व मनन करना है अर्थात् प्रभु का चिन्तन व मनन करना।

भारत के आध्यात्मिक आदर्शों को विश्वभर में प्रकाशित करने का सबसे अग्रणी काम करने वाले स्वामी विवेकानन्द ने अपने भक्तियोग में भक्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है कि भक्ति ईश्वर की सच्चे व निष्क पट भाव से खोज है। इस खोज का आरम्भ, मध्य और अन्त प्रेम से होता है। ईश्वर के लिए प्रेमोन्मत्तता का एक क्षण भी हमारे लिए शाश्वत मुक्ति देता है।[1] व यह क्षण भर के लिए होने वाली प्रेमोन्मता तथा उसके प्रति जिज्ञासा ही भक्ति है।

नारदभक्तिसूत्र में भक्ति के लक्षणों के विषय में अनेक मत दिये गए हैं। महर्षि व्यास अनुसार भगवान् की पूजा तथा अनुराग ही भक्ति है।[2] गर्गाचार्य के मत से भगवान् की कथा आदि में अनुराग होना ही भक्ति है।[3] परन्तु भक्ति सूत्रकार देवर्षि नारद के मतानुसार अपने सब कर्मों को भगवान् को अर्पण करना और भगवान् का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने से परम व्याकुल होना ही भक्ति है।[4]

ज्ञान व भक्ति दोनो भगवत्-प्राप्ति के साधन हैं किन्तु ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को प्रत्येक ने सरल व सुलभ बताया है। भक्ति साहित्य में भगवान् का अति विशेष स्थान है। यहाँ भक्ति के स्वरूप तथा लक्षण के विषय में कहा गया है कि जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता है उसी प्रकार भक्त का मन परमात्मा की ओर हो जाता है। यहाँ ज्ञान-योग, कर्मयोग तथा भक्तियोग को परम कल्याण का साधन माना गया है व इसके अतिरिक्त अन्य और कोई उपाय नहीं है-

**योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया।**
**ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्।**[5]

देवी भागवत में भी कर्मयोग, ज्ञान-योग तथा भक्तियोग तीनों ही मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग माने गये हैं, परन्तु इन तीनों में से भक्तियोग को सरल व सुलभ माना गया है।[6]

1. विवेकानन्द साहित्य 4/4
2. ना०भ०सू. 16.
3. ना०भ०सू. 17.
4. ना.भू.सू. 19.
5. भा. 11/20/6
6. दे० भा० 7/37/3

यद्यपि भक्तियोग और ज्ञान योग में गहन अन्तर है वह सामान्य बुद्धि की समझ से परे की वस्तु है। संत तुलसीदास ज्ञान और भक्ति का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि माया व भक्ति स्त्री-वर्ग से तथा ज्ञान व विराग आदि पुरुष-वर्ग से सम्बन्धित हैं। भक्ति स्त्री-वर्ग की होने के कारण माया द्वारा आकर्षित नहीं होती। माया और भक्ति दोनों एक वर्ग होने पर भी भगवान् को भक्ति अधिक प्रिय है। माया केवलमात्र नर्त्तकी समान है जो भक्ति से सदैव भयभीत रहती है व उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित नहीं कर पाती।[7]

गीता भाष्य में ज्ञान व भक्ति को एकदूसरे का पूरक माना गया है। वहां ज्ञान के बिना भक्ति तथा भक्ति के बिना परमात्मा कहाँ मिलता है।[8]

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार ज्ञानी की दृष्टि में भक्ति मुक्ति का एक साधन मात्र है। परन्तु भक्ति के लिए वह साधन भी है और साध्य भी। परन्तु मेरे (स्वामी जी) दृष्टि में यह भेद नाम मात्र का ही है। ज्ञानी तथा भक्त दोनों ही अपनी-अपनी साधना-प्रणालियों पर विशेषरूप से बल देते हैं। वे भूल जाते हैं कि पूर्ण भक्ति के उदय होने पर पूर्णज्ञान बिना माँगे ही प्राप्त हो जाता है तथा इसी प्रकार पूर्णज्ञान के साथ पूर्णभक्ति भी स्वयं ही आ जाती है।[9]

तुलसीदास अनुसार ज्ञानी और भक्त दोनों ही परमात्मा के लिए पुत्रों की भांति हैं। ज्ञानी प्रौढ़ पुत्र के समान है तथा भक्त अबोध बालक के समान। प्रौढ़ पुत्र में ज्ञान व निज का बल होता है। अतः माता उसके प्रति विशेष ध्यान नहीं देती, कम सतर्क रहती है क्योंकि वह अपना कार्य करने में स्वयं समर्थ होता है। परन्तु अबोध बालक की ओर से वह कभी निश्चिन्त नहीं रहती। यदि वह किसी ऐसे कार्य की ओर बढ़ता है जो उसके लिए हानिकारक हो तो मां उसे बरबस रोक देती है। ऐसे ही परमात्मा ज्ञानी के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता परन्तु भक्त को परमात्मा अकार्य में प्रवृत्त नहीं होने देता। भक्त व ज्ञानी दोनों के ही शत्रु काम, क्रोध आदि हैं जिनमें ज्ञानी की अपनी रक्षा स्वयं करनी होती है परन्तु भक्त की रक्षा का भार परमात्मा पर है। इसी कारण चतुर ज्ञानी ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी भक्ति का सहारा नहीं छोड़ते।[10]

संत कबीर के मतानुसार प्रथमतः ज्ञान, ज्ञान के पश्चात् प्रेमभक्ति, तदुपरान्त साक्षात्कारजन्य आत्मज्ञान की स्थिति आती है। उनके अनुसार परमात्मा का वर्णन करना ही भक्ति कहलाती है। यद्यपि परमात्मा को शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता परन्तु उसके विषय में कथन व श्रवण से अत्यन्त सुख मिलता है। कथन व श्रवण से सुख व परमार्थ की प्राप्ति होती है।[11]

इस प्रकार ज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क से है ाभ कहना सहज है ज्ञान-लाभ करने में दृढ़ अभ्यास, अनुकूल अवस्था आदि अनेक विषयों

7. तु० रा०, उ० का० 226 क/2 8. गीता भाष्य 9. भक्तियोग, भक्ति के लक्षण, 13
10. तु० रा०, अर० का० 42.5/4.5 11. क० ग्र०, पृष्ठ-230

और भक्ति का हृदय से। स्वामी विवेकानन्द ने सियालकोट में दिये भक्ति पर भाषण में कहा है कि ज्ञान-लाभ की अपेक्षा भक्ति-लाभ कहना सहज है। ज्ञान-लाभ करने में दृढ़ अभ्यास, अनुकूल अवस्था आदि अनेक विषयों की आवश्यकता होती है। शरीर सर्वथा स्वस्थ एवं रोगशून्य न होने से तथा मन सर्वथा विषयानुरागरहित न होने से योग का अभ्यास नहीं किया जा सकता, किन्तु सभी अवस्थाओं के लोग बड़ी सरलता से भक्ति-साधना कर सकते हैं।[12]

स्वामी जी कहते हैं कि कोई धन और कोई पुत्र की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करता है। वे अपने आपको बड़ा धार्मिक समझते हैं, किन्तु यह वास्तविक भक्ति नहीं है-वे लोग वास्तविक भक्त नहीं है। पुत्र प्राप्ति के लिए, धनी होने के लिए, स्वर्गलाभ के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते।[13]

ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हुए तुलसी ने ज्ञान को दीपक तथा भक्ति को मणि का रूप कहा है। दोनों अन्धकार का नाश करते हैं परन्तु ज्ञानदीप के बुझने का भय रहता है पर भक्तिमणि सदैव आलोकित रहती है। जिसके हृदय में यह भक्तिरूपी मणि निवास करती है, कामादि दुष्ट उसके निकट नहीं फटकने पाते हैं। उसको नाममात्र के लिए स्वप्न में भी दु:ख नहीं मिलता। यद्यपि वह मणि सर्वत्र विद्यमान है परन्तु भगवत्-कृपा के बिना किसी को प्राप्त नहीं होती। तुलसीदास जी कहते हैं कि परमात्मा यद्यपि ज्ञान व कर्मयोग से भी प्राप्त किया जा सकता है परन्तु परमात्मा को सबसे अधिक प्रिय केवल भक्त ही है। भगवान् राम के मुख से भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि समस्त संसार तथा जीव परमात्मा द्वारा उत्पन्न है। सब उसे प्रिय है परन्तु उसे मनुष्य अधिक प्रिय है, मनुष्यों में भी द्विज तथा द्विजों में भी वैदिक धर्म का आचरण करने वाले व उनमें भी विरक्त, विरक्त में भी ज्ञानी व ज्ञानी से भी विज्ञानी और विज्ञानी से भी अधिक भक्त प्रिय है।

इस प्रकार ज्ञान व भक्ति दोनों ही परमात्मा को पाने के अलग-अलग मार्ग हैं। परन्तु भक्ति-मार्ग ज्ञान की अपेक्षा अधिक सरल व साध्य है। भक्तिमार्ग पर चलता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करने का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। भक्ति की ऐसी महिमा को जानते हुए भी जो मनुष्य केवल ज्ञान के लिए श्रम करते हैं, उनका परिश्रम उसी प्रकार निष्फल है जिस प्रकार कामधेनु के रहते हुए भी आक के वृक्षों से दुग्ध प्राप्त करने की चेष्टा करना अथवा महासागर को नाव के बिना तैर कर पार करना।

**- शोधछात्रा, वी.वी.बी. आई. एस. एण्ड आई. एस, ( पी.यू ) साधु आश्रम, होश्यारपुर।**

12. भारत में विवेकानन्द/भक्ति (21), पृ-346
13. वही पृ. 665

# भक्ति एवं भक्ति-भाव का आधार

— सुश्री योगिता शर्मा

मानव-मन अनेक उद्‌गारों का कुंज है, जिनमें अनेक भाव लता-पादपों की भाँति उपस्थित रहते हैं। प्रेम, दया, करुणा, भक्ति, सहानुभुति, भय-क्रोध, जुगुप्सादि भावरूपी लताओं में कभी-कभी एक ही भाव प्रधान रहता है तो कभी सभी मिलकर हृदय को झकझोर देते हैं। इन समस्त भावों में 'प्रेम' सुखस्वरूप है और मानव अपने सम्बन्ध में अखण्ड सुखात्मक वस्तु की अभिलाषा करता है। प्रेम के सम्बन्ध में अखण्ड सुखात्मक वस्तु ईश्वर ही है, जीव नहीं। जीव पूर्ण- आनंद को निरतिशय सुखस्वरूप एवं आनन्दघन ईश्वर में ही पा सकता है। इस प्रकार ईश्वर मनुष्य की सबसे प्रमुख एवं बड़ी आवश्यकता है।

ईश्वर-प्राप्ति के सन्दर्भ में तीन साधन निर्दिष्ट हैं- कर्म, ज्ञान एवं भक्ति। मानव का ईश्वर के प्रति सानिध्य प्राप्त करने का भाव ही भक्ति कहा जा सकता है।

**भक्तिः**- परिभाषा- 'भज्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्ययान्त यह **'भक्ति'** शब्द सेवा, विभाग गौणवृत्ति, अनुरागादि का द्योतक है।[1] 'भक्ति' शब्द के आराधना, सेवा, भजन, विभाग, विश्वास, उपचार, आश्रय लेना, आश्रित होना, आराध्य-देवता का नाम स्मरण, जपन एवं ध्यानादि अर्थ हैं।[2] अन्य शब्दों में 'भक्ति' किसी व्यक्ति की अपने आराध्य के प्रति अनवरत स्नेह- प्रीति है। विशेषतः 'भक्ति' शब्द ईश्वर के प्रेम अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। इसीलिए मन में सदैव श्रीप्रभु की मूर्ति-स्थापना, भावना से सेवा एवं मनन, नेत्रों से श्रीभगवत्प्रेमी संतों, प्रभुप्रतिमा, चित्र आदि का दर्शन, मुख से श्रीभगवान् की गुण-स्तुति, सुयशयुक्त चरितों का कीर्तनगान, भजन अपने हाथों से श्रीहरि की मूर्ति एवं गुरु-संतों की पूजा- सेवा आदि भक्ति में लगे हुए व्यक्ति के कार्य हैं।[3]

श्रीरामानन्द ने छलकपट से रहित अनन्यभाव से भगवद्-सेवा को 'भक्ति' कहा

1. हलायुधकोश, पृ. 487 2. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 726
3. तुलसी के भक्त्यात्मक गीत, डॉ. वचनदेवकुमार, पृ. 25

है।[4] आचार्य जीवगोस्वामी के अनुसार- ईश्वरीय ज्ञान ही भक्ति है, किन्तु आराध्य के प्रति ज्ञान के साथ प्रीति का समावेश आवश्यक है।[5] मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति के लक्षण में चित्त की द्रवता को समाविष्ट किया है।[6]

**भक्तिभाव के आधार**- प्रेम सम्पूर्ण प्राणिजगत् की मूल मनोवृत्ति है। साथ ही प्रेम अखण्ड, शाश्वत तथा सदैव विद्यमान रहने वाला, सार्वजनीन भाव है। पात्रता एवं चरित्रता की विविधता से यह प्रेम अनेक प्रकार का हो जाता है।

**आचार्य अभिनव के मतानुसार**- उच्चस्तर की प्राप्ति पर बड़ों के प्रति पूज्यभाव 'भक्तिभाव' में परिणति हो जाता है। लौकिक प्रेम जब अलौकिक प्रेम का रूप धारण कर लेता है, जीवोन्मुखी प्रेम जब ईश्वरोन्मुखी प्रेम में परिणत हो जाता है, तब रागमयी भक्तिभावना उदित होती है।[7]

भारतीय-साहित्य में सर्वत्र प्रेम के माध्यम से ही आराध्य- विषयक प्रेम वर्णित है। जीवात्मा ईश्वर से मिलने के लिए सदैव व्याकुल रहती है, तथा उससे मिलकर अपने स्वरूप को उसी के साथ मिला देने की अभिलाषा रखती है। उपनिषदों में आत्मा एवं परमात्मा के मिलन को उत्कृष्ठ माना गया है। आत्मा सभी प्रकार से परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल रहती है और मिलन के बाद आनन्दाति कृपा की प्राप्ति कर लेती है क्योंकि परमात्मा का स्वरूप ही आनन्द मई है। श्रीमद्भागवत में भी रसस्वरूप श्रीकृष्ण की लीलाओं को व्याख्याकारों ने अलौकिक प्रतीकों की सहायता से विशद, विस्तृत एवं गहन व्याख्या करके, मानों भक्ति के साथ जोड़ा है। अतएव सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य एवं साहित्यशास्त्र रतिभाव को ही भक्ति का प्रथम सोपान स्वीकार करता है। भारतीय साहित्य में ही नहीं, अपितु पाश्चात्य- साहित्य में भी भक्ति के ऐसे ही उदाहरण प्राप्त होते हैं, जहाँ जीवात्मा की परमात्मा के प्रति मिलन की उत्सुकता दिखाई गई है।[8]

इसके साथ ही कुछ विद्वानों का मानना है कि विवेचनातिरिक्त एक अन्यमत, जो कि मानव की धार्मिक प्रवृत्ति की अन्य धार्मिक प्रवृत्तियों में प्रशंसा (Admiration) आदरयुक्त-भय तथा श्रद्धा (Riverence) - ये तीन तत्त्व विद्यमान रहते हैं। प्रशंसा आश्चर्य

---

4. श्री वैष्णवमताब्जभाष्कर, रामानन्द श्लोक - 65
5. 'प्रीतिसन्दर्भ' जीवगोस्वामी, पृ. 414-416
6. 'भक्तिरसायनम्' मधुसूदन सरस्वती, पृ. 9
7. मधुररस : स्वरूप और विकास, रामस्वार्थ चौधरी अभिनव, पृ. 78
8. रसविमर्श, डॉ वाटवे

एवं आत्महीनता की भावना का मिश्रित रूप है, आदरयुक्त भय, भय के साथ प्रशंसका संयोग है तथा श्रद्धा कोमल-भावना से मिश्रित आदरयुक्त भय है। इस प्रकार स्पष्ट है कि धार्मिक-भाव इन समस्त भावों के संघटन से निर्मित है।[9] इसी से समानता रखता हुआ भाव व विचारधारा भारतीयों के आदि- साहित्य 'वेदों' में भी प्राप्य है कि उसी प्राकृतिक-शक्ति का मूर्तिमान् स्वरूप, मानस में स्थापित कर, मानव ने उसकी भय एवं आश्चर्यमिश्रित श्रद्धा से उपासना की है। ऋग्वेद के मंत्रों में इसी प्रशंसा व श्रद्धा से पूर्ण हृदयोद्‌गार, मंत्रदृष्टा ऋषियों द्वारा प्रकट किए गए है।[10]

**निष्कर्षत :** 'भक्ति' प्रेम, श्रद्धा, प्रशंसा आदि मनोभावों का मिश्रित भाव है। डॉ. वाटवे ने अपने रसविमर्श में 'स्पिनोजा' के कथन को उद्‌धृत करते हुए लिखा है कि- भक्ति एक भावात्मक अनुभूति है। यह ईश्वर के स्वरूप-दर्शन एवं उसके विचारमात्र से उद्‌भूत होने वाले संवेदनात्मक प्रभावों के प्रति भक्त के मस्तिष्क की एक मिश्रित प्रतिक्रिया है।[11] अतः समग्र- विवेचन से स्पष्ट है कि **भक्ति में आत्समर्पण, शरणागति, आत्मनिवेदन एवं प्रार्थना आदि का भाव प्रधान है**। अपने अस्तित्व को मिटाकर अपने व्यक्तित्व को भगवदाकर अनुसार करना ही भक्ति का मूलबीज एवं अन्तिम सोपान है। **यह ईश्वर के प्रति प्रेमान्वित श्रद्धारूपा ऐसी चित्तवृत्ति है, जिसमें मानव पूर्णतः अपने अस्तित्व को, समस्त चेष्टाओं, व इच्छाओं को समाप्त कर ईश्वर में समर्पण एवं विलीनकरण कर देता है। साथ ही भक्ति में आनन्द- विभोर हो लोकोत्तर एवं परमानन्द- रूपी अमृततत्त्व को प्राप्त करता है।**

**- शोधछात्रा, कवॉटर नं.1, गणेश निवास, शान्ता-कुञ्ज,**
**वनस्थली विद्यापीठ, तहसील-निवाई,**
**जिला- टोंक ( राजस्थान )।**

9. संस्कृत काव्यशास्त्र के भावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, डॉ. हरिदत्त शर्मा ( शोध प्रबन्ध )
10. वही, पृ. 236
11. रसविमर्श, डॉ. वाटवे, पृ. 282

# पौराणिक साहित्य में भक्ति का स्वरूप

— श्री राजेश शर्मा

भक्ति तो आन्तरिक तथ्य है। प्रायः संसार का प्रत्येक मानव अपने-अपने तरीके से भक्ति-विधा को अपनाता है। भक्ति का सर्वाङ्ग विवेचन पौराणिक साहित्य में ही विद्यमान दिखता है। वैसे तो संस्कृत वाङ्मय में सर्वत्र भक्ति का विवरण मिलता है लेकिन पुराण ही भक्ति को जन-जन तक पहुँचाने का माध्यम बने हैं।

प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य में पुराणों को एक उच्च स्थान प्राप्त है। इनमें दया, क्षमा, उदारता, परोपकार, सज्जनता, वीरता, धैर्य, धर्मनिष्ठा, सत्य का पालन आदि का सजीव एवं सहज चित्रण प्राप्त होता है।

किसी भी दृष्टि से देखा जाये तो प्रत्येक पुराण में भक्ति ही का उल्लेख मिलता है। जैसे: मत्स्यपुराण में मनुष्य को नियम अनुसार व्रतादि का पालन करके भक्ति में प्रवृत्त होने का वर्णन किया गया है। साथ ही महाराजा मनु स्वयं श्रद्धापूर्वक मत्स्य भगवान् की स्तुति करते हुए कहते है कि हे भगवान् आपकी जय हो, हे लोकों के स्वामी चराचर सृष्टि के सृजन कर्ता आपकी जय हो एवं हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं।[1] इस प्रकार महाराज मनु द्वारा वन्दना किया जाने से प्रभु-भक्ति का स्पष्ट चित्रण मिलता है।

मार्कण्डेयपुराण में धर्म, नीति, सदाचार के साथ-साथ भगवान् सूर्य की भक्ति का वर्णन द्रष्टव्य है साथ ही भक्ति परक वर्णन प्राप्त होता है[2] कि मनुष्यों को आसक्ति का पूर्णतया त्याग करना चाहिये, पर यदि ऐसा सम्भव न हो तो सत्यपुरुषों के सङ्गति ही करनी चाहिए क्योंकि विषयासक्ति की औषधि सत्सङ्गति ही है।

भविष्यपुराण में पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्मार्थकाममोक्ष का सविस्तार विवरण मिलने के साथ-साथ भगवान् वासुदेव एवं सत्यनारायण देव का भजन कीर्तन एकाग्रचित्त से करने से स्वयं भगवान् भक्तों पर प्रसन्न होते हैं। अन्ततः परमपद की प्राप्ति होती है।[3]

भागवतपुराण तो भक्तिशास्त्र का अद्वितीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का मुख्य सिद्धान्त यह है कि भक्ति प्राप्त पुरुष के लिए कोई भी साधन और साध्य अवशिष्ट नही रह जाता। इसी में भक्ति का स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्ड रूप में समुन्द्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार भगवान के गुणों के श्रवण मात्र से मन की वृत्ति का अविछिन्न रूप से सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना ही भक्ति है।[4]

1. मत्स्य, पृ. 1/3, 28
2. मार्क, पु., पृ. 457
4. भवि. पु., प्रति. पर्व 11,15,21
4. भा.पु., 3/29/11-12

ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि मनुष्य को एकाग्रचित होकर भक्ति की भावना से तन्द्रारहित होकर अर्थात् विषय-वासनादि के त्यागपूर्वक देवों तथा पितृगणों की ही भक्ति करनी चाहिए।[5]

ब्रह्मवैवर्तपुराण में तो स्वयं ब्रह्मा जी श्रीकृष्ण की भक्ति करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु आपके चरणरूपी सरोज में मेरा मनरूपी भौंरा, प्रेम और भक्ति से निरंतर भ्रमण करता रहे और जन्म-मृत्यु रूपी रोग मे मेरी शान्तिरूपी औषध से रक्षा करो।[6]

वाराहपुराण में विशेषत: वाराह भगवान् की भक्ति का वर्णन किया गया है।[7] साथ ही व्रतों को प्रधानता दी गई है और कहा गया है कि व्रत करना भी एक प्रकार से भक्ति का ही अंग हैं। क्योंकि इन्ही व्रतों को करके मनुष्य का हृदय निर्मल होता है जिससे अन्त में मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

वामनपुराण में भी भक्ति के अनेकानेक व्याख्यान प्राप्त होते हैं। यथा: ब्रह्मा जी के द्वारा स्वयं भगवान् - वामन की स्तुति करना, तथा समस्त देवगणों सहित भगवान प्रभु द्वारा सभी देवों को अभीष्ट वर प्रदान करना आदि का वर्णन है।[8]

विष्णुपुराण में भी समस्त देवताओं द्वारा भक्तिभाव से भगवान् विष्णु को प्रसन्न करके आशीर्वाद प्राप्त करना तथा ध्रुव एवं प्रह्लाद के द्वारा भगवान् विष्णु के अनेक नामों यथा कमलनयन, पुरुषोत्तम, तीक्ष्णचक्रधारी आदि के द्वारा स्तुति का वर्णन भी प्राप्त होता है।[9]

शिवपुराण में स्वयं भगवान् शिव कहते हैं कि जो मनुष्य विधिवत् श्रद्धा एवं भक्तिभाव से मेरी पूजा-अर्चना करता है वह भक्त इस माया-रूपी संसार के जन्म-मरण के पापों से मुक्त हो जाता है।[10]

अग्निपुराण में स्वयं अग्निदेव कहते हैं कि जो मनुष्य व्रतों को विधिपूर्वक करता है, उसे मुक्ति तथा भुक्ति दोनो ही प्राप्त होते हैं एवं उसकी सर्व मनोकामनायें पूर्ण होती हैं।[11]

नारदीयपुराण भी मुख्यत: विष्णुभक्ति पर ही आधारित है। इसमें आदि से अन्त तक विविध कथाओं द्वारा यही प्रतिपादित किया गया है कि संसार में सबसे अधिक महिमा भक्ति की ही है। अत: सर्वदा सत्य को जानने के लिये अर्थात् उस परमसत्ता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भक्ति का ही आश्रय ग्रहण करना श्रेष्ठ होता है।[12]

पद्मपुराण में माता-पिता की आज्ञा का पालन करना, उनके उपदेशानुसार आचार-व्यवहार करना ही भक्ति भाव कहलाता है तथा स्वयं भगवान् ने वसुन्धरा देवी एवं भक्त तुलाधार की सत्यपरायण भक्ति की प्रशंसा की है।[13]

लिङ्गपुराण में स्वयं शिव भगवान् ने कहा है कि जो भक्त षोडशोपचार विधि सहित मेरा पूजन भक्तिभाव से करते हैं मैं उनके पापों का

5. ब्रह., पु. पृ. 35
6. ब्रह., पु. पृ. 61/1-2
7. बराह.पुराण, खण्ड 22
8. वाम. पुराण, 5/1-10
9. वि.,पु.,अ. 64
10. शि. पु.ख., 25
11. अग्नि., पु., 73/1
12. नारदीय, पु., पृ. 512
13. पद्म., पु., सृ.,ख., 32

नाश करके उनको परम पद की प्राप्ति देता हूँ।[14] गरुड़पुराण में भक्ति का प्रयोग सेवा अर्थ में हुआ है एवं सेवा को ही भक्ति कहा है।[15]

कूर्म पुराण में ऋषियों द्वारा भगवान् विष्णु एवं शिव को प्रसन्न करना तत्पश्चात् अपना दिव्य स्वरूप ऋषिगणों को दिखाना भी भक्ति का ही परिचायक है।[16]

स्कन्धपुराण 6 खण्डों में विभक्त है और भक्ति विषयक मतों से भरा पड़ा है। इसमें ईश्वर के अनेक नामों से भक्ति का वर्णन मिलता है।[17]

इस प्रकार पौराणिक साहित्य का सारतत्व भक्ति से भरा पड़ा है। इनमें की गई भक्ति की स्थापना भक्तों के माध्यम से लोक जीवन में अवस्थित आसुरी - प्रवृत्तियों को समाप्त करना एवं धर्म की स्थापना करना ही लक्ष्य रहा है। धर्म के अंगों[18] का प्रतिपादन भक्ति के अन्तर्गत ही मान्य रहा है। अतएव भक्ति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक माना जाता है। अन्ततः मानव इस भक्ति को प्राप्त करके स्वात्मोत्थान करते हुए परिवार, कुटुम्ब, ग्राम, नगर, राष्ट्र, एवं मानवता का उत्थान करके कृत-कृत्य हो सकता है।

**शोध छात्र, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।**

14. लिंगपु., ख. 4 15. ग. पु., अ. 231 16. कूर्म. पु., उ. 8-9
17. स्कन्दपुरा., 2/1 18. मनु. स्मृ. 6/23

# भानुभक्त की रामभक्ति

– श्री उमेश पौडेल

भानुभक्त आचार्य का जन्म आषाढ़ 29, शुक्लचतुर्दशी रविवार 1871 (ईस्वी सन् 1814) रविवार के दिन पश्चिमी नेपाल तनहुं के चंदी रम्धा गांव के सुप्रसिद्ध ब्राह्मण-परिवार में हुआ। पिता "श्री धनंजय आचार्य" तत्कालीन समाज में नौकरी किया करते तथा माता साक्षात् धर्म-स्वरूपा "श्रीमति धर्मवती देवी" परिवार की सेवा-शुश्रुषा में काल व्यतीत करतीं। भानुभक्त का बचपन पितामह "श्रीकृष्ण आचार्य जी" के सांनिध्य में व्यतीत हुआ जो प्रतिदिन धार्मिक कार्यों में व्यस्त रहते। पितामह का नाम श्रीकृष्ण अवश्य था परन्तु वे भगवान्श्रीराम के परम भक्त थे। भानुभक्त ने जब पंचम वसन्त को पार किया तो वैदिक धर्मानुयायी पितामह ने 1876 वि.सं. माघ शुक्ल पंचमी के दिन उन्हें अक्षरारम्भ कराया। इस प्रकार पितामह ही उनके शिक्षा-दीक्षा-गुरु बने। सामाजिक रीति-रीवाज अनुसार ही दस वर्ष की आयु में ही उनका प्रथम विवाह चन्द्रकान्ता देवी के साथ हुआ परन्तु दैवसंयोग से कुछ मासानन्तर ही चन्द्रकान्ता स्वर्ग सिधार गई। ग्यारह वर्ष की उम्र में पुनः पारिवारिक जनों ने तनहुँ जिले की ही चन्द्रकला से दूसरी शादी करवा दी, इस प्रकार उनका दाम्पत्य जीवन भी प्रारम्भ हुआ।

धार्मिक प्रवृति के पितामह जीवन के अन्तिम वर्षों को शिवधाम काशी में व्यतीत करना चाहते थे, इसी कामना के चलते उन्होंने भानुभक्त को साथ लिए काशी की ओर प्रस्थान किया। काशी में पितामह श्रीकृष्ण ने पूर्व परिचित विद्वानों से भानुभक्त का परिचय करवाया।

पितामह शिवनाम में ध्यानमग्न रहते तो भानुभक्त साधु-संन्यासी विद्वानों से धार्मिक प्रवचन सुना करते। इसी क्रम में भगवान् राम (काशी) विषयक बातें इनके मन-मस्तिष्क में घर कर गईं। श्रीराम के व्यक्तित्व का इन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि यहीं से इन्होंने काव्यरचना भी प्रारम्भ की। वि.स. 1889 के लगभग पितामह ने धर्मनगरी काशी में देह त्याग किया तत्पश्चात् व्यथित मनसा भानुभक्त 19 वर्ष की आयु में पुनः नेपाल चले गये।

काशीवास के समय विद्वत् संग ने इनमें जो कवित्व की शक्ति जगाई थी, उस शक्ति के अनुसार वे समय मिलते ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया करते। किसी दिन संयोगवश एक घास काटने वाले से बातचीत हुई, तो

घांसी ने बताया कि घास बेचकर प्राप्त धन से मैंने यह कुंआ बनाया। यह सुनते ही उनके मुख से कुछ पंक्तियां निस्सरित हुई :

**भर्जन्म घांसतिर मनदिई धन कमायो!**
**नाम क्यै रहोस्म पछि भनेर कुवा खनायो!!**
**घांसी दरिद्रि घरको तर बुद्धि कस्तो!**
**मो "भानुभक्त" धनि भैकन आज यस्तो!!**[1]

एक सामान्य घाँसी की यह सोच कि अपना नाम अमर रखने के लिए जीवनभर की कमाई एक कुंआ बनवाने में लगा दी, और मैं दुर्बुद्धि साधन सम्पन्न होने पर भी कभी ऐसा ख्याल तक नहीं आया कहा जाता है कि इसी घाँसी से प्रेरणा पाकर भानुभक्त ने अध्यात्म रामायण के आधारनेपाली भाषा में रामायण की रचना की, जिससे आज भानुभक्त नेपाली साहित्य में आदिकवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। भानुभक्त ने रामायण (महाकाव्य), भक्तमाला-वधूशिक्षा (लघुकाव्य) तथा प्रश्नोत्तर (कविता) की रचना की।

**नेपाली रामायण**

देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध भानुभक्तीय रामायण की कथा भी अध्यात्म रामायण की भांति सात काण्डों में विभक्त है।[2] जिसकी पाण्डुलिपि प्राप्ति से प्रकाशन तक की यात्रा कविवर मोती राम भट्ट[3] ने कराई।

भानुभक्त कृत रामायण में **बालकाण्ड**

| क्र.सं. | काण्ड | सर्ग | पद्य |
|---|---|---|---|
| 1. | बालकाण्ड | 7 | 132 |
| 2. | अयोध्याकाण्ड | 9 | 123 |
| 3. | अरण्यकाण्ड | 10 | 122 |
| 4. | किष्किन्धाकाण्ड | 9 | 143 |
| 5. | सुन्दरकाण्ड | 5 | 159 |
| 6. | युद्धकाण्ड | 16 | 381 |
| 7. | उत्तरकाण्ड | 9 | 257 |
| | सातकाण्ड | 65 सर्ग | 1317 |

1. भानुभक्त की संक्षिप्त जीवनी - डॉ. व्रतराज आचार्य, पृष्ठ संख्या 85-92, भानुप्रतिष्ठान अनामनगर काठमाण्डौ, वि.सं. 2063।
2. रामायण साझा प्रकाशन, नेपाल सरकार, पुलचोक ललितपुर नेपाल, 2008 सन्
3. नेपाली भाषा के सुप्रसिद्ध कवि (मोतीराम भट्ट-1923-1953 वि.सं) जिन्होंने भानुभक्त की कृतियों को संकलन कर सम्पादित किया। नेपाली साहित्य में इन्हें प्रथम गजलकार के रूप में भी जाना जाता है।
   रामायण, अरण्यकाण्ड, पद्य 115

का आरम्भ शिव-पार्वती संवाद से हुआ है। तदुपरान्त ब्रह्मादि देवताओं द्वारा पृथ्वी का भार हरने के लिए विष्णु से प्रार्थना की गई है। पुत्रेष्ठी यज्ञ के बाद राम जन्म, बाल लीला, विश्वामित्र-आगमन, ताड़का-वध, अहिल्योद्धार, धनुष-यज्ञ और विवाह के साथ परशुराम प्रसंग रूपायित हुए हैं।

**अयोध्याकाण्ड** में नारद आगमन, राज्याभिषेक की तैयारी, कैकई को वरदान, राम वनवास, गंगावतरण, राम का भारद्वाज और वाल्मीकि से मिलन, सुमंत की अयोध्या वापसी, दशरथ का स्वर्गवास, भरत आगमन, भरत चित्रकूट गमन, गुह और भारद्वाज से भरत की भेंट, राम-भरत मिलन, भरत की अयोध्या वापसी और राम के अत्री-आश्रम गमन का वर्णन हुआ है।

**अरण्यकाण्ड** मे विराध वध, शरभंग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्य से राम की भेंट, पंचवटी निवास, शूर्पनखा-विरूपकरण, मारीच वध, तारा विलाप, सीता हरण और राम विलाप के साथ जटायु और शबरी उद्धार की कथा है।

**किष्किंधाकाण्ड** में सुग्रीव मिलन, बाली वध, तारा विलाप, सुग्रीव अभिषेक, क्रिया योग का उपदेश, राम वियोग, लक्ष्मण का किष्किंधा गमन, सितान्वेषण के उपरांत संपाती की आत्मकथा का उद्घाटन हुआ है।

**सुंदरकाण्ड** में पवन पुत्र का लंका गमन, रावण-सीता संवाद, सीता से हनुमान् की भेंट अशोक वाटिका विध्वंस, ब्रह्मपाश, हनुमान्-रावण संवाद, लंका दहन, हनुमान् से सीता का पुनर्मिलन और हनुमान की वापसी की चर्चा हुई है।

**युद्धकाण्ड** में वानर सेना के साथ राम का लंका प्रयाण, विभीषण शरनगटी, सेतुबंध, रावण-शुक संवाद, लक्ष्मण-मूर्छा, लक्ष्मणोद्धार, कुंभकर्ण एवं मेघनाद वध, रावण-यज्ञ विध्वंस, राम-रावण संग्राम, रावण वध, विभीषण का राज्याभिषेक, अग्निपरीक्षा, राम का अयोध्या प्रत्यागमन, भरत मिलन और राम राज्य-अभिषेक का चित्रण हुआ है।

**उतरकाण्ड** में सवण, बाली एवं सुग्रीव का पूर्व चरित, राम-राज्य, सीता वनवास, अश्वमेधयज्ञ, सीता का पृथ्वी प्रवेश और राम द्वारा लक्ष्मण के परित्याग के उपरांत उनके महाप्रस्थान के बाद कथा की समाप्ति हुई है।

**रामायण में भक्ति**

भानुभक्त स्वयं श्रीराम के अनन्य भक्त थे अतः उनकी कृति रामायण में कतिपय स्थलों पर भक्ति की महिमा का बड़ा ही सरस और रोचक शैली में वर्णन हुआ है। भक्ति में भी सत्संग की महिमा का बखान विशेष प्रतिपादित हैं। सीताहरण के बाद उनकी खोज करते हुए श्रीराम जब प्रेममयी शबरी के आश्रम पर पहुंचे तो उसने बड़े ही प्रेमभाव से उनका आदर-सत्कार किया। कन्द-मूल से उनका

स्वागत किया। भगवान् राम ने नवधा भक्ति का उपदेश देते हुए सत्संग की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की और कहा-भक्ति के नौ साधन हैं और पहला साधन सत्संग है :-

**नौ साधन कि त भक्ति छन्,**
**ति नवमा पैल्हे त सत्संग हो।**
**पल्है साधन पो भयो पनि भेन्या बांकी,**
**रह्याका ति जो।।**
**आठ साधनहरु हुन ति ता क्रम,**
**सितै मिल्छन असल संगले।**
**सत्को संग भया,**
**सबै बनि गयो क्या हुन्छ कुन संगले।।**[4]

नेपाली भाषा एवं साहित्य को विश्व के साहित्य में स्थान दिलाने वाले भानुभक्त के रामायण और उनकी भक्ति-निष्ठा का नेपाली साहित्य में इतना प्रचार-प्रसार हुआ कि पूर्व से पश्चिम तक नेपाल का कोई ऐसा गांव अथवा कस्बा नहीं है, जहां उनकी रामायण की पहुंच नहीं हो और शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसको रामायण की अधोलिखित पंक्तियां याद न हों -

**एक दिन नारद सत्य लोक,**
**पुगिगया लोकको हित गरौं भनि,**
**ब्रह्मा ताहि थिया पर्या,**
**चरनमा खुसि गराया पनि।**
**क्या सोदच्छौ तिमी सोध,**
**म भन्छु म भनि मर्जि भयेथ्यो जसै,**
**ब्रह्मा को करुना बुजेर,**
**रिसिले बिन्ति गर्या यो तसै।।**[5]

भानुभक्त ने इस महाकाव्य के प्रत्येक स्थल पर काव्य-शक्ति एवं राम-भक्ति का अनन्य परिचय दिया है। काव्यीय दृष्टि से शायद ही कोई ऐसा छन्द-रसालंकार हो जो उनकी लेखनी से लिपिबद्ध न हुआ हो। तत्कालीन सामाजिक-पारिवारिक कोई स्थिति ही शायद भानुभक्त से अछूती रही हो, जिसे पढ़कर पाठक रोमांचित न होता हो। भगवान् श्रीराम वनवास जा रहे हैं फिर भी कैकेयी "माता के प्रति मन में तनिक भी विकार नहीं। वे कौशल्या से कहते हैं माते! मुझे आज्ञा दो मैं शीघ्र ही वापिस आऊंगा -

**गयो खन्या बेला मकान,**
**त मिलयों राज्य बनको**
**भरतले राज पाया यहि,**
**बसि गरुण राज्य जको।**
**बिदा बकस्या जावम खुशिस्ति,**
**म जान्याछू बनमा**
**म चांडै फिर्न्याछु बिरह,**
**नहवस कति मनमा।।**[6]

भानुभक्त के मत में जो लोग रामभक्ति करेंगे तथा रामोपासना करेंगे, उनके लिए इस लोक तथा परलोक में कुछ दुलर्भ नहीं है। इस

4. रामायण, अख्यकाण्ड, पद्य 115
5. रामायण, बालकाण्ड, पद्य-1-2
6. रामायण अयोध्याकांड पद्य-34

प्रकार रामभक्ति का जो समीचीन अभिव्यंजन भानुभक्त ने किया है, इसे देखकर नेपाली भाषा - साहित्य के समालोचक बालचन्द्र शर्मा ने कहा है कि - ''भानुभक्त ने भी वाल्मीकि की भांति स्वदेशी साहित्य की स्थापना की है।[7]

यद्यपि भानुभक्त वि.सं. 1926 को रामनामोच्चारण के साथ रामधाम को चले गये, परन्तु आज भी भानुभक्त की कृतियों से सिंचित होकर नेपालीभाषा एवं साहित्य पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा है।

**शोधछात्र, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।**

7. भानुभक्त और उनको युग है-1! बालचन्द्र शर्मा, पृ.सं. 91-113 साझा समालोचना, साझा प्रकाशन ललितपुर 2058 (वि.सं.)

# श्रीगुरुरविदास विजयमहाकाव्य में वर्णित गुरुरविदास की साधना-भक्ति

– श्री नरेन्द्र कुमार

आचार्य महावीरप्रसाद विरचित श्रीगुरु रविदासविजय महाकाव्य देववाणी संस्कृत में लिखा गया एक उत्तम महाकाव्य है। जिसमें गुरु रविदास की जीवनगाथा एवं उनके सन्देशों का विस्तृत वर्णन किया गया है। गुरु रविदास के विषय में आचार्य महावीर लिखते हैं-

गुरु रविदास एक महान् क्रान्तिकारी, समाज-सुधारक एवं ईश्वर-भक्त थे।[1] उनके द्वारा लिखे गए ग्रन्थों तथा उनके विषय में लिखे गये अनेक ग्रन्थों से उनके विचारों का स्पष्टीकरण होता है। वे ऐसे समय में हुए जब समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियों का प्रचलन था। सन्त रविदास ने देखा कि ये सभी बातें समाज को खोखला कर रही हैं। अत: उन्होंने सामाजिक सुधार के विचारों द्वारा समाज को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया तथा कुरीतियों के द्वारा समाज में जो बुराइयां आ रही थीं। समाज परस्पर द्वेष या असमानता की ज्वाला में जल रहा था। उसको अपने वाणी-रस द्वारा शीतल करते हुए समाज को शान्ति तथा समानता का पाठ पढ़ाया। रविदास जी कहते हैं कि जो सभी का प्रतिपालक है, तथा सारे संसार का पिता अथवा स्वामी है, मैं नित्य उसी की पूजा करता हूँ।[2] वस्तुत: ईश्वर की पूजा करना ही भक्ति है। भक्ति करने से साधारण अज्ञजन भी ईश्वरपद को प्राप्त हो जाते हैं। महर्षि व्यास के अनुसार भगवान् की पूजा आदि में अनुराग होना भक्ति है।[3] गर्गाचार्य के मतानुसार भगवान् की कथा आदि में अनुराग होना ही भक्ति है।[4] शाण्डिल्य ऋषि के विचार से आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग होना ही भक्ति है।[5] नारद-भक्ति-सूत्रकार महर्षि नारद कहते हैं कि किसी देवी या देवता के प्रति श्रद्धा को ही भक्ति कहा जाता है।[6] गुरु रविदास ने भी लोगों को भक्तिपथ पर चलने के लिए प्रोत्साहित किया।[7] गुरु रविदास कहते हैं-

1. श्रीगुरुरविदासविजयमहाकाव्य, 3.73
2. वही, 7.4
3. पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्य:। ना.भ.सू. 16
4. कथादिष्विति गर्ग:। वही. 17
5. आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्य:। वही. 18
6. वही. 19
7. प्रोत्साहनं भक्तिपथे जनानाम्। श्रीगुरुरविदासविजयमहाकाव्य, 7,19

मैं न मोक्ष चाहता हूँ न यश, न स्वर्ग, न अपवर्ग और जिन जिन स्थानों को प्राप्त कर पुनः व्यक्ति लौटकर नहीं आता उस परम पद को, अपितु दरिद्र, दीन, दुःखी व्यक्तियों को एकमात्र भक्ति का मार्ग दिखाना चाहता हूँ कि वास्तविक भक्ति क्या है।[8]

भक्तिमार्ग अपनाने वाले लोग आडम्बर के साथ पूजा-पाठ करने के बजाय ईश्वर के प्रति लगन और व्यक्तिगत पूजा पर जोर देते हैं। उनका यह मानना है कि अगर अपने आराध्य देवी या देवता की सच्चे मन से पूजा की जाए तो वह उसी रूप में दर्शन देंगे जिस भाव में भक्त उसको देखना चाहते हैं। गुरु रविदास भक्ति की महत्ता को बताते हुए कहते हैं कि-जिस कार्य को करने में विद्या, शक्ति और धन निष्फल हो जाते हैं, वहां भक्ति से ही सफलता प्राप्त होती है।[9] उनके अनुसार दूसरों का उपकार करना तथा समाज की सेवा करना उत्तम भक्ति है[10], इसके साथ ही दरिद्र की सेवा करना भी भक्ति ही है।[11] वे कहते हैं कि भक्ति का मार्ग सभी के लिए खुला होता है, चाहे वह धनी हो या गरीब हो, ऊँची जाति का हो या नीची जाति का, स्त्री हो या पुरुष हो, ईश्वर की भक्ति करने के सभी अधिकारी हैं, अतः हरिभक्ति में सभी का अधिकार है।[12] गुरु रविदास जी कहते हैं संसार में भगवान् के भक्त चाहे दुःखी हों चाहे सुखी हों वे सर्वदा उसके प्रभाव से रहित होते हैं अर्थात् न सुख में प्रसन्न तथा न दुःखों के आने से दुःखी होते हैं क्योंकि सुख हो या दुःख प्रभु की ही देन मानते हैं।[13] आचार्य महावीरप्रसाद ने अपने काव्य में गुरु रविदास की भक्ति के विषय में कहा है कि-गुरु रविदास का मानना था कि जो लोग अपनी जाति का घमण्ड करते है, या पाण्डित्य का अभिमान करते हैं वह व्यर्थ हैं तथा अन्य जो लौकिक पूजा इत्यादि है वह भी व्यर्थ है। वस्तुतः जो सभी प्रकार से परमात्मा को ही अपना मान चुका है वही भक्त है।[14] गुरु रविदास की भक्ति की यही विशेषता रही है कि उन्होंने समाज में प्रचलित जात्यादि का विरोध किया तथा मानवप्रेम एवं हरिभक्ति को ही सर्वोपरी माना। वे कहते थे कि जो हरिरूपी हीरे को छोड़ अन्य वस्तुओं की आशा करते हैं वे यमलोक ही जाएंगे।[15] अतः जो व्यक्ति पूर्णतः ईश्वर-परायण होता है, वही सच्चा भक्त कहलाता है। जो किसी प्रकार भी किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता तथा अपने को साधारण समझता हुआ विनम्रभाव से रहता है वही परमात्मा को प्रिय है और वही वास्तव में भक्त है। सुख को चाहने वाले तथा धन की कामना

---

8. श्रीगुरुरविदासविजयमहाकाव्य 5,38 9. वही, 5,41
10. वही. 6.9 11. दरिद्रसेवा हरि भक्तिरेव।। वही. 6, 10
12. वही. 7,15 13. वही. 7,21 14. वही. 7,41 15. वही. 9,12

करने वाले कभी भी सच्ची भक्ति भावना से युक्त नहीं हो सकते।[16]

भक्तिमार्ग में अत्यन्त तत्पर होने के कारण गुरु रविदास में सहज प्रेम जाग्रत हो गया, तभी तो वे अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण समाज में गुरुपद को प्राप्त हो गए।[17] उन्होंने समाज को यही शिक्षा दी कि भगवान् का प्रिय वही है जिसका मन निर्मल है।[18] वे प्राय: कहते थे कि मैं विद्वान् हूँ, मैं राजा हूँ, मैं बलवान् हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, इस प्रकार का अहंभाव जब तक भक्त में रहेगा तब तक ऐसे भक्त से हरि दूर ही रहेंगे।[19] उनके अनुसार कामना करने योग्य हरिनाम ही है, अन्य कुछ नहीं।[20] अत: गुरु रविदास के अनुसार हरि का नाम-स्मरण ही भक्ति हैं। रविदास जी का प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति को उपदेश था कि जिन के हृदय में रात और दिन भगवान् निवास करते हैं तथा जो काम क्रोध से रहित हैं वे ही सच्चे भक्त हैं।[21]

हे प्राणी! रात की नींद और दिन का स्वाद छोड़ दे तथा अन्य सभी निन्दा आदि छोड़कर दिन-रात हरि का स्मरण कर।[22] हरि की भक्ति से जन्म-मरण का बन्धन छूट जाएगा। हरि का चिन्तन परम-तत्व को दिखाने वाला है तथा इससे सत्यब्रह्म के प्रति सहज और परम भक्ति का उदय होता है।[23]

अन्त में यही कहा जा सकता है कि गुरु रविदास की भक्ति साधना बहुत ही सुदृढ एवं प्रशंसनीय है। उन्होंने जहाँ एक ओर ऊंच-नीच आदि का विरोध कर मानवप्रेम को प्रमुखता दी, वहीं दूसरी ओर हरिनाम के स्मरण को ही भक्ति कहा है। मनुष्य के सफल जीवन के लिए भगवान् के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का होना परमावश्यक है। क्योंकि यदि मनुष्य इहलोक या परलोक में सुख चाहता है तो उसे भक्ति का मार्ग अपनाना चाहिए। मानव के इहलोक ओर परलोक के कल्याण के लिए भक्तिमार्ग ही सरल तथा श्रेष्ठ मार्ग है। उनका तो यहाँ तक कहना है कि वह मनुष्य मनुष्य नहीं जो हरि की भक्ति से रहित है।[24]

**शोधछात्र, वी.वी.बी.आई.एस.एण्ड.आई.एस.**
**(पी.यू.) साधु आश्रम, होशियारपुर।**

---

16. श्रीगुरुरविदासविजयमहाकाव्य.
17. वही, 8,4
18. वही, 8,46
19. वही, 8,48
20. वही, 8,56
21. वही, 9.14
22. वही, 9,17
23. वही, 10.54
24. वही, 8.57

# उपनिषदों में भक्ति

– कुमारी शारदा देवी

भगवान् की प्राप्ति के जहाँ अनेक उपाय हैं वहाँ एक सरल साधन भक्ति भी है। विद्वानों के अनुसार यह साधन जितना सरल है, उतना कोई अन्य नहीं हो सकता। अन्य प्रकार के साधक को परिश्रम करते हुए भी बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना होता है। परन्तु भगवान् के भक्त को न कुछ परिश्रम करने की आवश्यकता होती है और न ही किसी प्रकार की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। वह तो भगवान् के विश्वास में तन्मय होकर सब कुछ भूल जाता है, उसे न तो अपने तन की ही सुधि रहती है और न मन की। वह तो उनके दर्शन की कामना करता हुआ आठों याम उन्हीं के ध्यान में तन्मय रहता है। जैसा कि ईशावास्योपनिषत् के मन्त्र में बताया गया है–

अर्थात् हे पूषन्! आप सत्यस्वरुप का मुख ज्योतिर्मय सूर्यमण्डलरूप पात्र से ढका है। मैं आपकी भक्तिरूप सत्यधर्म का अनुष्ठान करने वाला हूँ, इसलिए आप मुझे अपना दर्शन कराने के लिए उस आवरण को हटा लीजिए। हे प्रजापति! अपनी इन किरणों को समेट लो, और तेजसमूह को भी लीन कर लो। मैं ध्यान के द्वारा आपके दिव्य रूप का दर्शन कर रहा हूँ। अभिप्राय यह है कि भक्त के लिए भगवान् की भक्ति ही सत्य धर्म है और उसकी इच्छा केवल मात्र दर्शन करना ही होती है।[1] परमात्मा के साक्षात्कार के अतिरिक्त वह कुछ चाहता ही नहीं। क्योंकि उसे विश्वास है कि–

भगवान् हमारे अज्ञानरूपी अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपक के द्वारा नष्ट कर देंगे। उसे परमात्मा पर विश्वास होता है कि वही उसे मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है क्योंकि परमात्मा ही परब्रह्म, परमधाम, परमपवित्र, परमपुरुष, अजन्मा और विभु है।[2]

उपासना से परमात्मा की प्राप्ति होती है पर प्रश्न उठता है कि सगुण ब्रह्म की उपासना करने वाले श्रेष्ठ हैं या निर्गुण ब्रह्म की। इसके विषय में गीता में भगवान् श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जो उपासक मेरे में अपने मन को स्थिर कर परम श्रद्धाभाव से नित्य उपासना करते हैं, वे मेरी दृष्टि में एक प्रकार से सभी झंझटों से मुक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं।[3] इससे स्पष्ट हो जाता है कि समान भाव से भक्ति करने वाले योगी परमात्मा को सहज भाव से प्राप्त कर लेते हैं।

1. ईशावास्योपनिषद् – 15.16 मन्त्र 2. गीता, 10.10–11 3. वही, 12/2

भक्ति में ध्यान का ही नहीं, नामजप का भी भारी महत्त्व है। उपनिषद् में ही कहा गया है कि जो भक्त ध्यान, जप और भजन करता है वह अमृतस्वरूप हो जाता है।[4]

परमात्मा के ऐसे भक्त जो सभी प्रकार से भगवद् भक्ति में लीन होकर परमात्मभाव में लीन हो जाते हैं वे भक्त इच्छित भोगों को प्राप्त करके उनका उपभोग करते हुए परमपद को प्राप्त करते हैं।[5]

भक्ति की महिमा के वर्णन में पुराणादि ग्रन्थों में बहुत कुछ मिलता है। 'भक्त के वश में है भगवान्' यह मान्यता नयी नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वंयं गीता में कहते हैं कि मेरा जो भक्त जिस भावना से मेरा भजन करता है मैं भी उसी भाव से उसे मिलता हूँ। इस प्रकार भक्त सभी प्रकार से मेरे ही शरण में आते हैं।[6]

भक्ति में यह आवश्यक नहीं कि भक्त साकार या निराकार की ही उपासना करे। जिस देवता को इष्ट मानकर उसमें मन रम जाय वही भक्ति है। परन्तु भक्त के मन में यह विश्वास होना चाहिए कि वह जिसकी भक्ति कर रहा है। वह उसका अन्तिम लक्ष्य है। श्वेताश्वतरोपनिषत् में गुरु की भक्ति का भी निर्देश मिलता है। यथा

**यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।**
**तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।**[7]

इस प्रकार ईश्वर में भक्ति होना आवश्यक है तो गुरु में भी भक्ति होनी चाहिए। गुरु को ब्रह्म कहा गया है- क्योंकि गुरु ही ईश्वर प्राप्ति के लिए अपने सदुपदेश से शिष्य को कृतार्थ करता है। इसीलिए गुरु को ही साक्षात् ब्रह्म कहा है। उक्त कथन का अभिप्राय यही है कि उपनिषदों में भक्तियोग के उपदेश का भी समावेश है और वे यह शिक्षा देते हैं कि भक्ति किसी की भी की जा सकती है। जिसे भगवान् मानकर भक्ति की जाएगी, वह उसके लिए अवश्य ही भगवान् बन जाएगा। परन्तु भी स्पष्ट है कि भक्त के मन में भगवान् के प्रति तन्मयता होनी चाहिए। उपनिषद् में कहा भी गया है कि जिस किसी की भी भक्ति हो, हमें उसे पाने के लिए श्रद्धा और भक्तिभाव से उसकी आराधना में मग्न हो जाना चाहिए।[8]

**शोधछात्रा, वी.वी.बी.आई.एस.एण्ड.आई.एस.**
**(पी.यू.) साधु आश्रम, होशियारपुर।**

4. गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्
5. रामपूर्वतापिन्युपनिषत्
6. गीता, 4/11
7. श्वेताश्वतरोपनिषत्
8. श्वेताश्वतरोपनिषद् - पञ्चम अ० मन्त्र-14

## संस्थान-समाचार

दान–

श्री हर्ष नाथ, गांव व डा. बलदिंया,
शिमला (हि.प्र.)। 20000/–

श्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा,
मंगल भवन, सिविल लाईन,
होश्यारपुर। 500/–

भागमल महाजन चेरिटेबल ट्रस्ट,
महाजन कम्पौंड, मुंबई। 3000/–

श्री हिमांशु,
वार्ड 3, मुहल्ला आलुवालिया,
दसूहा, (होशियारपुर)। 1500/–

डॉ. गिर्राज किशोर,
विक्रम कालोनी, अलीगढ़ (उ.प्र.) 1500/–

डॉ. देवनारायण भारद्वाज,
अवन्तिका, रामघाट मार्ग, अलीगढ़ 1500/–

लै. ए.एम. वोहरा,
बसन्त विहार, नई दिल्ली। 2501/–

श्री सुरिन्द्रमोहन सोनी,
निकट संत फरीद स्कूल,
साधु आश्रम, होशियारपुर। 500/–

श्री राजपाल कौड़ा,
1550, सेक्टर–4, गुड़गांव। 500/–

श्रीमती गुरशान्ति नाथ,
राजदूत मार्ग, चाणक्यपुरी,
नई दिल्ली 5000/–

जाजू पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट,
बसन्त ऐवन्यू, अमृतसर। 2000/–

श्री सुरेश चन्द्र भसीन, पवनपुरी,
बीकानेर (राज.)। 1500/–

डॉ. वी.डी. धवन,
350, 15–ए, चण्डीगढ़। 1000/–

श्री राजेन्द्र कुमार अग्रवाल,
83 हिग्, ड्यूपलैक्स, गाजियाबाद। 701/–

डॉ. एन. के. उबराए,
कालिन्दी कालोनी, नई दिल्ली। 2100/–

श्री सुभाष चन्द्र,
शीश महल बाजार, होशियारपुर। 50/–

श्री राजीव शर्मा,
कृष्णा नगर, होशियारपुर। 500/–

श्रीमती निर्मला शर्मा,
गां. शरिथच, डा. समरकोट,
रोहड़ू, शिमला। 500/–

श्री जे.के. सामा,
सेक्टर 16–ए, चण्डीगढ़। 2000/–

श्रीमती गीता खन्ना,
197, फेज–6, मोहाली। 500/–

प्रो. देव दत्त शास्त्री,
अग्र नगर, मालेरकोटला। 2100/–

श्री जगदीश चन्द्र सदाना,
यूनाईटिड इन्जिनीयर्स,
माता रानी रोड, लुधियाना। 600/–

एडवोकेट देवव्रत शर्मा,
62, राजेन्द्र नगर, जालन्धर शहर। 3500/–

श्री वी.आर. अग्निहोत्री,
66, ईस्ट एण्ड इनक्लेव, दिल्ली। 2100/–

डॉ. रेणु, प्रोफैसर एवं चेयरमैन,
पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला। 1000/–

मै. भूवालिका जनकल्याण ट्रस्ट,
तोश हाऊस, फर्स्ट फ्लोर,
आइडिया एक्सचेंज, कोलकत्ता। 1000/-

मै. कलैदोस्कोप एक्रोस्ल प्रा.लि.,
अजमल खान रोड़, करोल बाग,
नई दिल्ली। 3500/-

श्री एम. पी. वीर, 18-सी,
विजय नगर, दिल्ली। 501/-

डॉ. वी. के. कपिला,
सुतैहरी रोड़, होशियारपुर। 1100/-

श्री नरेश सूद,
ए.बी.सी. हैंडलूम, होशियारपुर। 1100/-

श्रीमती राज रानी,
गली नं. 7, हरगोबिन्द,
निकट नीला झंडा, लुधियाना। 1100/-

श्री चन्द्र मोहन खन्ना,
207, भेरा एनक्लेव, नई दिल्ली। 1100/-

श्री सुदर्शन कुमार पराशर,
54, रेलवे मण्डी, होशियारपुर। 1000/-

**वार्षिक सदस्यता शुल्क –**

श्री बृजमोहन,
वी.वी.आर.आई, होशियारपुर। 500/-

**विज्ञापन–**

श्री विवेक सोंधी,
बलवीर टावर, पी.के.एफ,
नामदेव चौंक, जालन्धर। 2100/-

---

**हवन-यज्ञ–**

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ।

मई-जून, 2015 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ किया गया।

---

किया उस रूप में उनकी लघुवाणियाँ भी बहुत बड़े साहित्य की नींव तो मानी जा सकती हैं, तथा उन्होंने भक्ति के जिस मार्ग का आश्रय लिया उस पर उत्तरवर्ती बहुत से कवि चलते दिखाई दिए। अस्तु। जिन विद्वान् लेखकों तथा विदुषियों ने विश्वज्योति के इस अंक के लिए अपना समय निकालकर लेख भेजें हैं, उन सभी का धन्यवाद करना मेरा कर्त्तव्य है। स्थायीसाहित्य के लिए उनके ये लेख बड़े मायने रखते हैं। उन सभी को धन्यवाद, करने का परम कर्तव्य समझते हुए संस्थान की ओर से सभी का धन्यवाद; साथ ही अनेक छात्रों तथा छात्राओं ने भी अपनी-अपनी योग्यता के अनुरूप लेख भेजकर जो रुचि दिखाई वे भी वर्धापन के पात्र हैं। विश्वज्योति पत्रिका में राजकीय प्रकाशन विभाग के नियमानुसार पृष्ठ संख्या निश्चित होने से सभी लेख इन दोनों अंको मे छापें नहीं जा सके अत: शेष लेख अग्रिम अंको में छापे जायेगें। लेखक महोदय अन्यथा न समझें। भविष्य में भी सभी के सहयोग का अभिलाषी।

– इन्द्रदत्त उनियाल
(संचालक-सम्पादक)

# विविध समाचार

➠ **आर्यरत्न श्री पूनम सूरी, प्रधान डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति ने प्रधानमंत्री को 2 करोड़ रुपये का चैक प्रधानमंत्री राष्ट्रीय राहत-कोष के लिए भेंट किया।**

आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी जी के नेतृत्व में डी.ए.वी. के पदाधिकारियों का एक शिष्टमंडल प्रधानमंत्री, श्री नरेन्द्र मोदी जी से मिला और उन्हें प्रधानमंत्री राहत कोष के लिए 2 करोड़ रुपये की राशि का एक चैक भेंट किया। डी.ए.वी. के उद्देश्यों, लक्ष्यों और सरोकारों का परिचय देते हुए श्री सूरी जी ने मान्य प्रधानमंत्री जी को बताया कि 20 लाख छात्र-छात्राओं, 60 हजार अध्यापक-अध्यापिकाओं को लेकर 800 डी.ए.वी. संस्थाएं राष्ट्र की अनन्य सेवा कर रही हैं। प्रधानमंत्री राहत कोष में 2 करोड़ रुपये की राशि देने पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए मान्य प्रधानमंत्री जी ने छात्रों, अध्यापकों सहित डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति को अपना हार्दिक आशीर्वाद दिया।

➠ **सोलन में महात्मा हंसराज की 151वी जयंती पर हुआ भव्य समारोह। प्रधानजी ने कहा 'डी.ए.वी. का हर शिक्षक हो धर्मशिक्षक'**

डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के संयुक्त तत्त्वावधान में सोलन में 22 अप्रैल को आयोजित 'महात्मा हंसराज दिवस' के अवसर पर देश-भर से आए पांच हजार से अधिक पदाधिकारियों, निदेशकों, क्षेत्रीय निदेशकों, प्राचार्यों, अध्यापकों सहित आर्य नर-नारियों को सम्बोधित करते हुए डी.ए.वी. तथा प्रादेशिक सभा के प्रधान आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी ने महात्मा हंसराज के स्वप्नों को पूर्ण करने के लिए सत्य और धर्म की राह पर चलने का भावपूर्ण आह्वान किया। देश के मौजूदा हालात पर अपनी चिंता व्यक्त करते हुए मान्य प्रधानजी ने कहा- 'देश का नैतिक ताना-बाना छिन्न-भिन्न हो चुका है। आज आवश्यकता है हम सब संगठित होकर ऋषि दयानन्द और महात्मा हंसराज के कार्यक्रम को फिर से उठायें। आइए, सब मिलकर संकल्प लें- हम आर्य बनेंगे, सत्य को धारण करेंगे, धर्म के मार्ग पर चलेंगे। आर्यों के इस वार्षिक

संगम में देश के प्रत्येक राज्य से क्षेत्रीय निदेशक, प्राचार्य, बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। डी.ए.वी. प्रबंधक समिति के 17 पदाधिकारी (यह एक रिकार्ड संख्या है ) इस आयोजन में अपनी भागीदारी देने के लिए आए।

मान्य प्रधानजी के नेतृत्व में पिछले कुछ वर्षों से आरम्भ की गई परम्परा को निभाते हुए इस वर्ष महात्मा हंसराज दिवस पर शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियों और योगदान के लिए प्रो. (डॉ.) जसपाल सिंह संधू, सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा प्रो. (डॉ.) परमजीत सिंह जसवाल, उप-कुलपति, राजीव गाँधी नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, पटियाला, को डी.ए.वी. के विशिष्ट सम्मान से अलंकृत किया गया। इस अवसर पर आर्य संन्यासियों एवं आर्य विद्वानों को वेद एवं आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिए सम्मानित किया गया।

**राष्ट्रीय संगोष्ठी के लिए शोधपत्र आमंत्रित।**

अथर्व शोध संस्थान, भिवानी, शांतिधर्मी (मासिक) जीन्द, गुगनराम सोसायटी व महर्षि दयानन्द शिक्षा संस्थान, बोहल संयुक्त रूप से एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन करने जा रहे हैं जिसके मुख्य विषय **''महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं हिन्दी''** व **''आर्यसमाज का नारी उत्थान में योगदान''** है। इस संगोष्ठी के लिए सम्माननीय प्रतिभागियों से उपरोक्त विषयों पर शोधपत्र आमंत्रित हैं। शोधपत्र 2000-2500 शब्दों में शुद्ध टंकित करवा कर ई-मेल **grsbohal@gmail.com** पर ओपन फाईल में भेजें ताकि शोधपत्रों को पुस्तक रूप देने में सुविधा हो व शोधपत्र की एक हार्ड कापी के साथ आप अपना परिचय, फोटो एक स्वयं का पिन कोड सहित पता लिखा लिफाफा व पंजीकरण शुल्क 500/- का चैक/ड्राफ्ट/आई.पी.ओ. **रामफल सिंह दलाल** के नाम बनवाकर भेज सकते हैं। शोधपत्र 31 अगस्त 2015 तक रजिस्टर्ड डाक/कोरियर द्वारा निम्न पते पर भेजें।

डॉ. रामफल सिंह दलाल, निदेशक,
अथर्व शोध संस्थान, आर्यन टॉवर, रोहतक गेट,
भिवानी-127021 (हरियाणा)।

अंत र्विषय :

1. आर्य समाज का हिन्दी आन्दोलन।
2. महर्षि दयानन्द का हिन्दी गद्य/पद्य साहित्य पर प्रभाव।
3. आर्य साहित्यकारों का हिन्दी को योगदान।
4. आर्यसमाज का नारी शिक्षा में योगदान।

## आर्यरत्न श्री पूनम सूरी, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के पुनः निर्विरोध प्रधान निर्वाचित

**कहा..... आर्यसमाज के लिए मेरे खून का एक-एक कतरा हाज़िर है !**

पूरे भारतवर्ष से आए प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के पुनः निर्विरोध निर्वाचित प्रधान डॉ. पूनम सूरी ने कहा कि आर्यसमाज और डी.ए.वी. के माध्यम से देश की युवापीढ़ी को संस्कारित करने के कार्यक्रम को बहुआयामी बनाया जा रहा है। उन्होंने बताया कि डी.ए.वी. विद्यालयों में पढ़ रहे छात्रों के लिए धर्मशिक्षा की पुस्तकें नये सिरे से तैयार की जा रही हैं जिन्हें विद्यार्थियों के मानसिक स्तर और उनकी रुचि के अनुसार रूप दिया जा रहा है। अध्यापकों की भूमिका को रेखांकित करते हुए मान्य प्रधानजी ने आह्वान किया कि सभी अध्यापक धर्मशिक्षक बनें अर्थात् सत्य और धर्म पर चलने वाले और सत्य तथा धर्म का प्रचार करने वाले बनें। उन्होंने कहा कि इस प्रक्रिया में आचार्य का ब्रह्मनिष्ठ होना और क्रोध-रहित होना एक बहुत बड़ी विशेषता है जिसकी ओर प्रयत्न करते रहना चाहिए।

मान्य श्री सूरी जी, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली के वार्षिक अधिवेशन में बोल रहे थे। इस अधिवेशन में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की एक वेबसाइट का उद्घाटन हुआ जिससे अब सभा की गतिविधियां संपूर्ण विश्व में वेबसाइट पर देखी जा सकेंगी। वेबसाइट में गतिविधियों के अतिरिक्त सभा के संगठनात्मक ढांचे, इसके इतिहास और आरम्भिक काल से अब तक प्रधान-पद को अलंकृत करने वाले महानुभावों के चित्र, आर्यसमाज के विद्वानों, संन्यासियों, भजनोपदेशकों की जानकारी प्राप्त होगी। भविष्य में इस वेबसाइट के माध्यम से व्यक्ति विश्व-भर में कहीं पर बैठे हुए इसकी सहायता से यज्ञ आदि प्रक्रिया को स्वयं कर सकेगा। उपस्थित सभासदों ने इस कदम की विशेष सराहना की।

**आर्यरत्न श्री पूनम सूरी, प्रधान, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति पी.एच.डी. की मानद-उपाधि से अलंकृत हुए।**

श्री पूनम सूरी, प्रधान, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति को तीर्थङ्कर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद के दीक्षान्त समारोह पर मूल्याधारित शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं पत्रकारिता तथा वाणिज्य के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए पी.एच.डी. की मानद-उपाधि से अलंकृत किया गया।

विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री सुरेश जैन ने उपाधि प्रदान करने से पहले पढ़े गए उल्लेख में श्री पूनम सूरी को जनसंचार माध्यम का सुप्रसिद्ध व्यक्तित्व बताते हुए कहा कि श्री सूरी देश के सबसे बड़े शिक्षा-संगठन-डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त्री समिति के प्रधान हैं जो शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में 20 लाख विद्यार्थियों एवं 60 हजार अध्यापक- अध्यापिकाओं वाले 800 संस्थानों का प्रबंधन करती है। उदात्त स्वभाव के धनी श्री सूरी ने इस उपाधि से अलंकृत किए जाने पर अपने विचार रखते हुए अत्यंत नम्रतापूर्वक इस उपलब्धि को डी.ए.वी. में कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति के योगदान का फल बताया।

**डी.ए.वी. फिल्लौर में मनाया गया महात्मा हंसराज दिवस।**

डी.आर.वी. डी.ए.वी. सेण्टेनरी पब्लिक स्कूल फिल्लौर में डी.ए.वी. संस्था के प्रथम मुख्याध्यापक एवं त्याग के उदाहरण महात्मा हंसराज जी का जन्मदिवस मनाया गया। इस अवसर पर आयोजित विशेष प्रात:कालीन सभा में विद्यार्थियों ने महात्मा जी के जीवन एवं कार्यों पर प्रकाश डाला। उनकी याद में भजन गाए गए तथा भाषण दिए गए।

# पुण्य-पृष्ठ खण्ड

वेदादि शास्त्रों के प्रेरणाप्रद वचनों सहित, स्मारक पृष्ठ

## विश्वज्योति
## भक्ति विशेषांक
## के
## इस भाग में

वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, मनुस्मृति, महाभारत, पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थों से स्वाध्याय, मनन तथा जीवन में आचरण करने योग्य एवं प्रेरणादायक सद्वचनों को संगृहीत किया गया है।

इन शिक्षाप्रद वचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस प्रकार के वचनों को निरन्तर पढ़ने तथा उनका मनन करने और तदनुरूप जीवन को ढालने से पाठक संसार में रहते हुए भी अपार शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

**प्रत्येक पृष्ठ पर**

हिन्दी अर्थ सहित शास्त्र-वचन हैं।

# दानी-सज्जनों की नामावली


| | पृष्ठ |
|---|---|
| Sh. K.K. Sharma, U.K. | 102 |
| डॉ. अंजु भण्डारी, पंचकूला | 103 |
| डॉ. रेणु, पटियाला | 104 |
| श्रीमती सुमित्रा देवी बस्सी, लुधियाना | 105 |
| सर्वश्री जाजू सार्वजनिक धर्मार्थ, न्यास, अमृतसर | 106 |
| Mr. Anil Vasudev, London | 107 |
| श्रीमती अरुणा सूद, होशियारपुर | 108 |
| सर्वश्री बैजनाथ भण्डारी सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास, नई दिल्ली | 109 |
| श्रीमती सन्तोष हासिजा, नई दिल्ली | 110 |
| श्री रवि कुमार जैन, होश्यारपुर | 111 |
| डॉ. भागेन्द्र सिंह ठाकूर, जोगेन्द्रनगर (हि.प्र.) | 112 |
| Sh. P.C.P. Radhakrishnan, Pondicherry | 113 |
| प्रो. वेद प्रकाश शर्मा, यू.एस.ए. | 114 |
| श्रीमती सन्तोष शर्मा, यू.एस.ए. | 115 |
| डॉ. राजेन्द्र कुमार अग्रवाल, गाजियावाद | 116 |
| डॉ. लज्जा देवी मोहन, पानीपत | 117,118 |
| Wg. CDR. Lakshminarayanan S.R.,(R.T.D.) Pollachi, Tamilnadu | 119 |
| श्री जे. के. सामा, चण्डीगढ़ | 120 |
| श्रीमती राजरानी, लुधियाना | 121 |
| श्रीमती कमलेश शर्मा, कोटा जंक्शन, राजस्थान | 122 |
| श्रीमती सुशील कौशल, होशियारपुर | 123 |
| श्री चन्द्रमोहन खन्ना, नई दिल्ली | 124 |
| Rachna Enterprises Pvt. Ltd New Delhi | 125 |
| डॉ. एम.एल. शर्मा, यू.एस.ए. | 126 |
| डॉ. गिर्राज किशोर, अलीगढ़ | 127 |
| श्री देवनारायण भारद्वाज, अलीगढ़ (उ.प्र.) | 128 |
| श्री देवव्रत शर्मा, जालन्धर | 129,130 |
| श्री बी. आर. अग्निहोत्री | 131 |
| श्री जगदीश चन्द्र सडाना, लुधियाना | 132 |
| Dr. B.D. Dhawan, Chandigarh | 133 |

सर्वश्री भुवालका जनकल्याण न्यास, कोलकाता 134
डॉ. बी. के. कपिला, होश्यारपुर 135
प्रो. देवदत्त शास्त्री, मालेरकोटला 136
Sh. Surinder Mohan Soni, Hoshiarpur 137
श्रीमती गीता खन्ना, मोहाली 138
श्री सुदर्शन पराशर, होशियारपुर 139
PKF Finance Ltd. Jalandhar 140
सर्वश्री नरेश चन्द्र सूद, होशियारपुर 141
श्रीमती उषा चोढा, नई दिल्ली 142
श्री प्रेम कृष्ण बहल, नई दिल्ली 143
श्री अरविन्द कुमार मेहता, आगरा 144

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः॥

महा. उद्योग प. 39. 3

कोई व्यक्ति अपने जीवन में निरन्तर दान से, कुछ व्यक्ति परस्पर मीठा बोलने से, कोई व्यक्ति मन्त्र के प्रभाव से तथा कुछ-एक औषध इत्यादि के बल पर प्रिय होते हैं अर्थात् अपने साथ अच्छा व्यवहार करने वाले को अच्छे लगते हैं। पर वस्तुस्थिति यह है कि जो अच्छे होते हैं वे इन सभी से हट कर भी लोक में प्रिय होते हैं तथा प्रिय होना एक दैविक गुण है न कि किसी कारणवश।

*With best compliments from :*

# *Sh. K. K. Sharma*

**29, Paxton Avenue,**

**Slough Berks,**

**SLI 2SX U. K.**

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रः चाण्डालवेश्मनि।।

मलयमारुत, 44. 82.

सज्जन व्यक्ति सभी प्रकार के प्राणियों के ऊपर दया करते हैं। चाहे वे हिंसक ही क्यों न हों। देखो तो सही चन्द्रमा रात्रि में जब अपनी चान्दनी पृथ्वी पर विखेरता है तो, वह ऊँच-नीच, गरीब-अमीर का भेद-भाव किए बिना सभी के घरों में समानरूप से चान्दनी फैलाता है अर्थात् सज्जन व्यक्तियों के लिए सभी प्राणी समान होते हैं, वे अपना-पराया, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब का भेद नहीं करते।

अपने पूज्य पापा

# स्व. श्री ओ. पी. लाल

[रिटायर्ड डिप्टी रजिस्ट्रार, पंजाब यूनि. चंडीगढ़ एवं भूतपूर्व कार्यकारिणी सदस्य, वी.वी.आर. आई., साधु आश्रम, होशियारपुर]

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजिका :

## डॉ. अंजु भण्डारी ( पुत्री )

## 772, सैक्टर 4, पंचकूला ( हरियाणा )।

पिता ह्येनं जनयति पुरुषं पुरुषर्षभ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात् स गुरुरुच्यते।।

रामा. अयोध्याकां. 111. 3

पुरुष को जन्म देने के कारण पिता गुरु कहलाता है। आचार्य मनुष्य को ज्ञान देता है, इसलिए आचार्य भी गुरु कहा जाता है। जो विद्यार्थी को केवल विद्यार्थी न समझते हुए उसको सोने से हीरा बनाना चाहते हैं। (स्व. पण्डित श्री नत्थूराम शास्त्री तथा स्व. श्री विश्वेश्वरनाथ शर्मा वात्स्य भी उन्ही में से थे)।

सम्माननीय

# स्व. पं. श्री नत्थूराम शास्त्री

[दयानन्द नगर]

एवं

# स्व. पं. श्री विश्वेश्वरनाथ शर्मा वात्स्य

[बाजार वकीलां]

**होशियारपुर**

द्वारा प्रदत्त उत्तम मार्गदर्शन, आशीर्वचन तथा सद्भाव को स्मरण करते हुए इनकी पावनस्मृति में

**श्रद्धाञ्जलि समर्पित**

प्रयोजिका :

## डॉ. रेणु

प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, लोक प्रशासन विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)

आत्मनो बन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः।
आत्मनो मित्रमात्मैव तथाऽऽत्मा चात्मनः पिता।।

महा. आ. पर्व. 73.7

मनुष्य के लिए उसकी अपनी आत्मा ही उसका भाई है, अपनी आत्मा ही उसका आश्रय है, आत्मा ही उसका अपना मित्र है तथा आत्मा ही पिता है। अत: व्यक्ति को आत्मचिन्तन करना चाहिए।

अपने पूज्य पति

# स्व. श्री केशवचन्द्र जी ठेकेदार

[निधन : 18-10-1994]

जो संस्थान के परम हितैषी तथा परम दानी पुरुषों में से थे, जिनके निधन से समाज एक महान् व्यक्ति के जाने से हुई कमी को कभी पूरा नहीं कर सकता।

**की**

**पुण्यस्मृति**

**में**

उनके विनीत बच्चों तथा बन्धु-बान्धवों और हितचिन्तकों
की ओर से

प्रयोजिका :

**श्रीमती सुमित्रा देवी बस्सी** (धर्मपत्नी)

**534-एल, माडल टाऊन, लुधियाना।**

आपत्सु यो धारयति धर्मं धर्मविदुत्तमः।
व्यसनं ह्येव धर्मस्य धर्मिणामापदुच्यते॥

महा. आ. प. 154.14

जो व्यक्ति जीवन में बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर भी धर्म की रक्षा में तत्पर रहता है, वही महान् धर्मात्मा माना जा सकता है, क्योंकि जो धार्मिक व्यक्ति होते हैं, उनकी परीक्षा आपत्तियों से ही होती है, उसमें सफलता पाने वाला व्यक्ति ही सच्चा धार्मिक कहा गया है।

❋

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के परमप्रेमी तथा जीवन-सदस्य

**स्व. श्री बृजलाल जी जाजू**

एवं उनकी धर्मपत्नी

**स्व. श्रीमती मनभरी देवी जाजू**

(जिनका दुःखद निधन क्रमशः दि. 17-2-1975 तथा 29-11-1987 को हुआ)

तथा उनके सुपुत्र

**स्व. श्री विश्वनाथ जाजू**

(जिनका दुःखद निधन 3-7-1979 को हुआ)

तथा उनके सुपौत्र

**स्व. दीपक जाजू (सुपुत्र स्व. लीलाधर जाजू)**

(जिनका 34 वर्ष की अल्पायु में ही दुःखद निधन जून, 1995 में हुआ)

एवं

**स्व. श्री लीलाधर जाजू**

(जिनका निधन 1-6-1998 को हुआ)

की पुण्यस्मृति में

उनके सभी प्रेमियों, बन्धु-बान्धवों और विनीत बच्चों

की ओर से

प्रयोजक :

**सर्वश्री जाजू सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास, 184, वसन्त ऐविन्यू, अमृतसर।**

संविभक्ता च दाता च भोगवान् सुखवान् नरः।
भवत्यहिंसकश्चैव परमारोग्यमश्नुते।।

महा. वनपर्व 259. 24

जो व्यक्ति अपनी कमाई में से देवताओं तथा अतिथियों को देता है, अर्थात् यथाशक्ति दान देता है, वह समृद्धशाली तथा सुखी रहता है। जो किसी की (मनसा, वाचा और कर्मणा) हिंसा नहीं करता अर्थात् किसी का बुरा नहीं सोचता, वह निश्चित ही नीरोग रहता है, क्योंकि वह निश्चिन्त रहता है। जीवन में किसी प्रकार की चिन्ता न करना स्वास्थ्य का मूल कारण है।

*With best compliments from :*

**Mr. Anil Vasudev**

*8, Prince's Avenue,*

*Kingsbury,*

*London (U.K.)*

न माता न पिता किञ्चित् कस्यचित् प्रतिपद्यते।
दानपथ्यौदनो जन्तुः स्वकर्मफलमश्नुते।।
महा. शां. प 298. 39

किसी भी जन्म में प्राणी के माता–पिता उसके पूर्वजन्म में किए गए कर्म को बदलने में सहायता नहीं कर सकते। वह इस जन्म में जो कुछ दानपुण्य करता है, उसी का फल परलोक जाते हुए उसके मार्ग में सहायता करता है अर्थात् जीव को अपने ही कर्मों के अनुसार सब कुछ प्राप्त होता है।

दिवंगत माता जी

# श्रीमती कैलाशवती जी सूद

**[ जिनका दुःखद देहान्त दिनांक 24 अप्रैल, 1979 को हुआ ]**

की
पुण्य स्मृति
में

प्रयोजक वर्ग :

**श्रीमती अरुणा सूद तथा समस्त भाई बहिन**

बहादुरपुर, होशियारपुर।

दुर्लभोऽप्यथवा नास्ति योऽर्थी धृतिमवाप्नुयात्।
स दुर्लभतरस्तात ! योऽर्थिनं नावमन्यते।।

महा. शां. प. 128. 13.

संसार में ऐसा व्यक्ति बड़ी कठिनाई से मिल पायेगा जिसको किसी वस्तु की आवश्यकता हो और वह उस वस्तु को किसी से न मांगे अर्थात् उस वस्तु के बिना ही धैर्यपूर्वक अपना निर्वाह कर ले। दूसरी ओर ध्यान दें तो ऐसा व्यक्ति भी कठिनाई से ही मिलेगा जो मांगने वाले को बड़े सत्कार के साथ इच्छित वस्तु को देकर उसकी इच्छा पूरी करदे।


हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

**सर्वश्री बैजनाथ भण्डारी सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास**

इ-22, डिफैन्स कालोनी,
नई दिल्ली - 110 024

एकः प्रजायते जन्तुः एक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुंक्ते सुकृतम् एकश्चाप्नोति दुष्कृतम्।।

महा. सुक्तिसुधा. भाग-1, पृ. 307

यह एक शाश्वत नियम है कि प्राणी संसार में अकेले ही पैदा होता है, किसी को भी साथ लेकर नहीं आता। जब वह मरता है तब सभी सगे-सम्बन्धियों के विद्यमान होने पर भी अकेले ही मरकर जाता है,किसी को साथ नहीं ले जाता। 'जीव' जिस शरीर को साथ लेकर पैदा हुआ था, उसको यहीं छोड़ जाता है। अतः प्राणी ने जो भी अच्छे-बुरे कर्म अपने जीवन में किए हैं, उनका फल भी वह अकेले ही भोगता है, उसमें किसी की भी सांझेदारी नहीं होती। अगर उसने अच्छे कर्म किए तो अच्छा फल भोगेगा और बुरे कर्म किए तो बुरा फल भोगेगा। देखा गया कि रिश्तेदार भी केवल श्मशान तक मृत शरीर के साथ जाकर, उसे लकड़ी देकर मुँह मोड़ कर वापिस चले आते हैं। कोई उसके साथ नहीं जाता। ऐसे समय में केवल धर्म ही मृतजीव के साथ जाता है या यों कहिए कि धर्म ही उसको अच्छे लोकों में ले जाता है।

अपने पूज्य पति

# स्व. श्री सचिदानन्द हासिजा

**[ जिनका दुःखद देहान्त दिनांक 4-6-2002 को हुआ ]**

की
पुण्य स्मृति
में
सादर समर्पित

प्रयोजिका :

**श्रीमती सन्तोष हासिजा,**
**31/12, ग्राउण्ड फ्लोर,**
**ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली - 110 088**

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तत्रापि सुधियाभाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता।।

सुभाषितरत्नमाला, 1. 139

शास्त्रों के अनुसार यद्यपि मनुष्य को इस जन्म में पूर्व जन्म के किए गए कर्मों के अनुसार ही अच्छा तथा बुरा फल मिलता है और कर्म के अनुसार ही बुद्धि प्राप्त होती है। फिर भी बुद्धिमान् व्यक्तियों को अच्छी प्रकार बुद्धिपूर्वक विचार करके ही कार्य करना चाहिए।

IN EVERLASTING MEMORY OF

## LATE SMT. KAMLA JAIN

(Expired on 7th July 2009)

ON HER 6TH DEATH ANNIVERSARY

**DEEPLY REMEMBERED BY :**

**RAVI KUMAR JAIN (Son)**
**NEENA JAIN (Daughter in Law)**
**VARUN JAIN (Grand Son)**
**SHEENA JAIN (Grand Daughter in Law)**
**AMIT JAIN (Grand Son in Law)**
**PRERNA JAIN (Grand Daughter)**
**Great Grand Children**
**ANANYA, VIBHAV, NAVYA, RIDIT**

**PHARMA CRAFTS (INDIA)**
**P. W. D. Rest House Road, Gagret – 177201, Distt. Una (H. P.)**
**SURGINEEDS**
**N. A. C. Buildings, Gagret–177201, Distt. Una (H. P.)**
**SHREYANS INDIA**
**"Pragati Bhawan", Near S. D. City Public School,**
**Chintpurni Road, Hoshiarpur - 146001 (Pb.)**
**Cell No.: 85588–66155, 98886–91475**

**शमस्तु परमो धर्मः प्रवृत्तः सत्सु नित्यशः ।**
**गृहस्थानां विशुद्धानां धर्मस्य निचयो महान् ।।**

महा. अनु. प. 141. 70

सभी प्रकार से विषय-वासनाओं से दूर हो जाना शम कहलाता है। अच्छे व्यक्तियों में शम हमेशा दिखाई देता है। जो गृहस्थी शम का पालन करता हुआ जीवन व्यतीत करता है, उसको पर्याप्त रूप से धर्म का लाभ होता है।


**हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :**

# डॉ. भागेन्द्र सिंह ठाकुर

**निकट आई. टी. आई.,**
**जोगेन्द्रनगर, जिला मण्डी ( हि. प्र. ) - 176 120**

सर्वान् देवान् नमस्यन्ति, सर्वधर्मांश्च शृण्वते।
ये श्रद्धधानाः शान्ताश्च, दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥

महा. शां. प. 110. 18.

जो व्यक्ति अपने जीवन में किसी भी देवता के प्रति भेदभाव न रखते हुए सभी को प्रणाम करते हैं अर्थात् सभी धर्मों के प्रति आदर रखते हैं। सभी के धार्मिक विचार सुनते हैं, सभी धार्मिकग्रन्थों के वचनों का समान रूप से आदर करते हैं, सभी पर पूर्ण श्रद्धा रखते हैं, जो परम्परा से मान्य या श्रद्धेय व्यक्तियों के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हैं, सभी प्रकार से शान्त रहते हैं, वे कठिन से कठिन विपत्तियों को पार कर लेते हैं।

## भगवान् रमन तिरुवन्नमलाई

तमिलनाडू
की
पुण्य स्मृति
में
सादर समर्पित

प्रयोजक –

*Sh. P. C. P. Radhakrishnan*

Prop., Progress Transport, 120, Rue Lal Bahadur,
Pondicherry – 605 001

यमर्थसिद्धिः परमा न मोहयेत्, तथैव काले व्यसनं न मोहयेत् ।
सुखं च दुःखं च तथैव मध्यमं, निषेवते यः स धुरंधरो नरः ।।

महा. शां. पर्व. 226. 16

जिस व्यक्ति को जीवन में बड़े से बड़ा लाभ भी आकृष्ट नहीं करता अर्थात् यदि उसे बड़े से बड़ा लाभ होने वाला है, उस ओर आकृष्ट नहीं होता, उस ओर जाने की इच्छा नहीं करता, तथा जीवन में बड़े से बड़ा संकट आने पर भी जो व्यक्ति विचलित नहीं होता, अर्थात् किंकर्तव्यमूढ नहीं होता, चाहे दुःख आवे या सुख आवे दोनों को समान दृष्टि से देखता है अर्थात् दुःख आने पर जो दुखी नहीं होता तथा सुख मिलने पर जो प्रसन्न नहीं होता। ऐसा ही पुरुष बड़े से बड़े कार्य को सफलतापूर्वक करता है अर्थात् उसके लिए संसार में कोई भी ऐसा कार्य नहीं जिसको वह न कर सके।

❋

# स्वर्गीय भीष्म देव जी महाशय

**जिनका दुःखद निधन 26-12-1989 को**
**गांव पालकवाह ( ऊना ) में हुआ**

तथा
उनकी धर्मपत्नी

# स्वर्गीया श्रीमती प्रीतम देवी

जो बहुत ही धर्म-परायणा तथा देवीस्वरूपा थीं

की

**पुण्य स्मृति**

में

सादर समर्पित।

प्रयोजक :

**प्रो. वेद प्रकाश शर्मा** (पुत्र)

तथा

**श्रीमती सन्तोष शर्मा** (पुत्रवधू)

मिन्नेसोटा स्टेट, यू. एस. ए.

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे।
फलन्ति च परस्यार्थे सत्पथस्था इव द्रुमाः ॥

सूक्तिरत्नाकर 20

जिस प्रकार राजमार्ग पर विद्यमान वृक्ष स्वयं धूप को सहन करते हुए दूसरों को छाया प्रदान करते हैं तथा अपने फल दूसरों को ही प्रदान करते हैं क्योंकि वृक्ष कभी भी अपने फलों को स्वयं नहीं खाते। उसी प्रकार समाज में सही मार्ग पर चलने वाला परोपकारी पुरुष स्वयं कष्टों को सहन करते हुए भी दूसरों को सुख पहुँचाने की चेष्टा करते हैं तथा अपने पास अर्जित धन को निर्धनों, जरूरत वाले लोगों को प्रदान करते रहते हैं।

## स्व. पं. रुलिया राम जी ठेकेदार

जो कर्म को ही ईश्वर की आराधना मानने वाले, ठेकेदारी के काम में भी ईमानदारी को न त्यागने वाले तथा सदा विपत्तिग्रस्त लोगों की सहायता करने वाले थे। उनका 80 वर्ष की आयु में 19.4.1986 को निरन्तर अपने कार्य में व्यस्त रहते हुए ही निधन हो गया तथा उनकी धर्मपत्नी धर्मस्वरूपा, पतिपरायणा एवं सद्गृहिणी

## स्वर्गीया श्रीमती कौशल्या देवी जी

जिनका दु:खद निधन 5. 1. 1991 को एवं उनके सुपुत्रों

**स्व. सुरिन्द्र कुमार शर्मा, रवीन्द्र कुमार शर्मा तथा किरण कुमार शर्मा एवं उनके छोटे दामाद श्री शशी भारद्वाज**

जिनका दु:खद निधन 14. 3. 1992, 30. 9. 2005, 14. 2. 2009 एवं 1. 7. 2011 को क्रमशः हुआ

**की पुण्य स्मृति में**

प्रयोजकवर्ग:

**श्रीमती सन्तोष शर्मा एवं प्रो. वेदप्रकाश शर्मा ( यू. एस. ए. )**

**अरुण, भरत, डॉ. संजय, श्रीमती प्रेम, ईशान व अनुज, होश्यारपुर।**

**विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पञ्चमम्।**
**मित्राणि सहजान्याहुः वर्तयन्तीह ते बुधाः।।**

सूक्तिरत्नाकर 27

व्यक्ति को इस संसार में पदे-पदे मित्र की आवश्यकता होती है। अत: उसे विद्या, शूरता-वीरता, चतुरता, बल, धैर्य ये पाँच चीजें स्वभाव से ही मित्ररूप में प्राप्त हैं, अर्थात् व्यक्ति के जीवन में इनमें से कोई न कोई किसी न किसी समय उसकी विपत्ति में काम आती है या उसकी रक्षा करती है। ये पांचों वस्तुएँ व्यक्ति में प्रतिपल विद्यमान रहती हैं। अत: बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वह समय-समय पर यथाशक्ति इनका सहारा ले।

❋

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के वरिष्ठ जीवन-सदस्य और इसके प्रथम सञ्चालक
पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु जी के परमस्नेही, भ्रातृ-तुल्य

## स्व. डॉ. गणेशीलाल जी अग्रवाल

[लाहौर व नई दिल्ली]

जो प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनन्य भक्त थे, जिनका हृदयगति रुक जाने के कारण 27-5-1975 को दिल्ली में स्वर्गवास हुआ,

## स्व. श्रीमती रमती देवी जी

[पत्नी स्व. डॉ. गणेशीलाल जी अग्रवाल]
[जिनका निधन दिनाँक 26-12-1992 को हुआ]

तथा पुत्र

## स्व. श्री सनतकुमार जी अग्रवाल

[जिनका निधन दिनांक 15-6-1982 को हुआ]

एवं

## स्व. श्रीमती पुष्पा

[पुत्री स्व. डॉ. गणेशीलाल अग्रवाल] [निधन 15-1-1994]

की पावनस्मृति में

प्रयोजक-वर्ग:

**श्री राजेन्द्रकुमार अग्रवाल** व परिवार के अन्य सदस्य, द्वारा **डॉ. अतुलकुमार गुप्त**,
83, एच. आई.जी. डुप्लैक्स, चन्द्रनगर, गाजियाबाद-201 011

**समारोपितशौचस्तु नित्यं भावसमाहितः।**
**केवलं गुण-सम्पन्नः शुचिरेव नरः सदा॥**

महा. अनु. प. 108. 4

जिस व्यक्ति का आचरण पवित्र है, जो मन में सदा अच्छे भाव रखता है तथा जो दया-दाक्षिण्य आदि अच्छे गुणों से युक्त है, वह व्यक्ति सभी प्रकार से पवित्र होता है।

❋

# डॉ. महता वसिष्ठदेवमोहन

[ जुलाई 1917 – 12 सितम्बर 2003 ]

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजकवर्ग :

**डॉ. लज्जा देवी मोहन ( पत्नी ) एवं परिवार**

**463-एल, माडल टाऊन, पानीपत**

अस्थिरं जीवितं  लोके यौवनं धनमस्थिरम्।
अस्थिरं पुत्रदारादि धर्मः कीर्तिः यशः स्थिरम्।।

चा. राजनीतिशा., 3. 14

इस परिवर्तनशील संसार में प्राणी का जीवन, युवावस्था तथा जीवनभर कमाया हुआ धन, सन्तान, स्त्री आदि सभी नाशवान् हैं, केवलमात्र व्यक्ति द्वारा किए गए धार्मिक अच्छे कर्मों से प्राप्त धर्म तथा उससे प्राप्त यश एवम् दानादि सुकृत कर्म के करने से प्राप्त कीर्ति ही स्थिर है। इसलिए व्यक्ति को जीवन में यथाशक्ति, अच्छे कर्म ही करते रहना चाहिए उससे उसकी कीर्ति आदि स्थिर रहती है।

**श्री समीर मोहन**

[ 19 दिसम्बर 1948 –
13 मार्च, 2010 ]

**श्रीमती प्रतिष्ठा दत्त**

[ 16 मई 1947 –
30 अक्तूबर, 2008 ]

**की स्मृति में**

प्रयोजकवर्ग :

**डॉ. लज्जा देवी मोहन ( माता ) एवं परिवार**

**463-एल, माडल टाऊन, पानीपत**

येन येन शरीरेण यद् यत् कर्म करोति यः।
तेन तेन शरीरेण तत् तत् फलमुपाश्नुते।।

महा. अनु.प. 116.27

मनुष्य जीवन में ऐसा कोई कर्म न करे जिससे उसको इस लोक और परलोक में दुःख उठाना पड़े, क्योंकि कर्ममीमांसा का सिद्धान्त है कि मनुष्य जिस योनि में जिस जिस शरीर से जैसा-जैसा कर्म करता है, उसको उसी प्रकार की योनि में उसी शरीर से उस कर्म का फल भोगना पड़ता है अर्थात् कर्म का फल मनुष्य को निश्चित रूप से भोगना पड़ता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह सत्कर्म ही करे जिस से दोनों लोक उसके लिए कल्याणमय हों।


# PREETHAM

## SENIOR CITIZEN'S ENCLAVE

**POLLACHI, TAMIL NADU -642 002**

**A HOME FOR SENIOR CITIZENS**

*A Calm, Quite & Peaceful place for Comfort, Care Homely Veg. Food, Prayers, Satsangs & Spiritual Discourse with full Med. Facilities close by, etc.*

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

**WG. CDR. LAKSHMINARAYANAN S. R.** (RTD.)

CONTACT : – Tel.: 98422–54202/ 94430–54204

e-mail :– vanitha@preetham.org.in Visit at : www.preetham.org.in.

**धनं लभते दानेन मौनेनाज्ञां विशाम्पते।**
**उपभोगांश्च तपसा ब्रह्मचर्येण जीवितम्।**

महा. अनु. प. 7.14

व्यक्ति दान करने से निश्चय ही धन प्राप्त करता है। मौन धारण करने से आज्ञा पालन कराने का सामर्थ्य प्राप्त करता है। जीवन में निरन्तर तपस्या करने से नानाविध उत्तम पदार्थ तथा ब्रह्मचर्य के द्वारा दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। अतः व्यक्ति को चाहिए कि अपने कल्याण के लिए इनको अपने जीवन में अपनाए।

# स्व. श्री चिरञ्जीव लाल जी सामा

जो इस संस्थान के श्रद्धालु एवं पोषक रहे और हमेशा सत्य तथा आर्यमार्ग पर
चलते रहे, उनकी इच्छा रही कि उनके बच्चे आपस में प्रेम से रहें
और सत्यमार्ग पर चलें, वैदिक रीतियों को अपनाएँ
और अन्धविश्वास से दूर रहें
(जिनका निधन 24-8-1972 को हृदयगति रुक जाने के कारण चण्डीगढ़ में हुआ)

की

पावन स्मृति

में

**उनके सभी घनिष्ठ प्रेमियों, बन्धु-बान्धवों एवं विनीत बच्चों**

की ओर से

प्रयोजक : **श्री जे. के. सामा** (पुत्र), चण्डीगढ़।
सर्वश्री सी. एल. सामा चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़।

**चक्षुः दद्यान् मनो दद्यात् वाचं दद्यात् सुभाषितम्।**
**उत्थाय चासनं दद्याद् एष धर्मः सनातनः।।**

महा. वन. प. 2.56

महाभारत में गृहस्थी का धर्म बताते हुए कहा गया कि जब कभी गृहस्थी के घर में कोई अतिथि आ जावे तो उसे प्रेमभरी दृष्टि से देखे। जो व्यक्ति परिचित न हो, रिश्तेदार न हो और अचानक बिना बुलाए द्वार पर आ जाय तो वह अतिथि होता है। ऐसा कोई अपरिचित व्यक्ति आ जाय तो उसके प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए उससे मधुर भाषा में वार्तालाप करे, उसे बैठने के लिए आसन दे अर्थात् यदि अतिथि आ रहा हो तो उठकर उसका स्वागत करे तथा यथोचित सत्कार करे यही गृहस्थी का धर्म है।

❋

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

## श्रीमती राजरानी

सर्वश्री अल्का जनरल स्टोर
मीना बाजार, लुधियाना।

**धर्ममर्थं च कामं च यथाशक्ति न हारयेत्।**
**ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम्।।**

चाणक्यनीति, 513

व्यक्ति को चाहिए कि वह जीवन में धर्म, अर्थ तथा काम विषयक चिन्तन तो करे उसको छोड़े नहीं। पर प्रत्येक दिन ब्राह्ममुहूर्त अर्थात् प्रातःकाल उठकर चिन्तन करे कि मेरा कल्याण किस प्रकार हो अर्थात् व्यक्ति को मनुष्ययोनि प्राप्त करने पर अपने जीवन का उच्च लक्ष्य रखना चाहिए।

आदरणीय पति

## स्व. श्री सत्यवान् जी शर्मा

(जिला भाषा अधिकारी, होशियारपुर)

की पावनस्मृति में

सादर समर्पित

प्रयोजिका:

**श्रीमती कमलेश शर्मा**

कैण्ट होम्यो क्लीनिक, माला रोड,

कोटा जंक्शन (राजस्थान)

**कर्माण्यकुहकार्याणि येषां वाचश्च सूनृताः।**
**येषामर्थाश्च सम्बद्धा दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥**

महा. शां. पर्व. 110.12

जो व्यक्ति अपने जीवन में किसी काम को केवल दिखाने के लिए ही न करके बल्कि उस अपना कर्तव्य-कर्म समझकर करते हैं, जो (दूसरों के द्वारा गुस्से में बोलने पर भी) सर्वदा सबके साथ मीठी वाणी बोलते हैं, जो जीवन में धन कमाते हुए उसको यथाशक्ति अच्छे कार्यों में भी खर्च करते हैं वे जीवन में बड़े से बड़े दुःख को भी पार कर जाते हैं।

अपने पूज्य पति

## स्व. डॉ. सुदर्शन कौशल

**[ जिनका दुःखद निधन दिनांक 5-1-2008 को हुआ ]**

की

**पुण्यस्मृति**

**में**

सादर समर्पित।

प्रयोजकवर्ग :

**श्रीमती सुशील कौशल**

तथा

**पुत्र ललित और हिमांशु**

मोहल्ला आहलूवालिया, दसूहा, होशियारपुर।

चिरं वृद्धान् उपासीत चिरमन्वास्य पूजयेत्।
चिरं धर्मं निषेवेत कुर्याच्च चान्वेषणं चिरम्।।

महा. शां. पर्व. 266.75

व्यक्ति को चाहिए कि वह वृद्ध व्यक्तियों की सेवा चिरकाल तक करता रहे तथा उनके साथ सत्संग भी करे, सर्वदा वृद्ध पुरुषों का आदर करे तथा धर्म का पालन भी बहुत देर तक करता रहे एवं जीवनपर्यन्त धर्म के विषय में सोचता रहे।

## स्व. श्री योगेन्द्रपाल जी खन्ना

[जिनका निधन : 13-10-1973 को हुआ]

## स्व. श्रीमती शीला रानी खन्ना

[जिनका निधन : 17-05-2014 को हुआ]

## स्व. श्री दिनेश खन्ना

[जिनका निधन : 20-06-2014 को हुआ]

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

**श्री चन्द्रमोहन खन्ना एवं समस्त परिवार**

एम. के. कम्प्यूटर्ज़, 207, भेरा इनक्लेव, पश्चिम विहार, नई दिल्ली- 110 087

सत्यं वेदास्तथाङ्गानि सत्यं विद्यास् तथा विधिः।
व्रतचर्या तथा सत्यम् ओंकारः सत्यमेव च।।

महा.शां. पर्व, 199.66

सभी विद्याओं में वेद और वेदाङ्ग सत्य हैं। विद्या भी सत्य हैं। विधियाँ भी सत्य हैं। सम्पूर्ण व्रतों का पालन भी सत्य द्वारा ही किया जाता है तथा ओंकार भी निश्चित ही सत्य है। अत: सत्य का अनुसरण करना ही श्रेष्ठ है।


*With best compliments from :*

*Rachna Enterprises Pvt. Ltd.,*

*&*

*Kaleidoscope Apparel Pvt. Ltd.*

***13/30, AJMAL KHAN ROAD, KAROL BAGH,***

***NEW DELHI - 110 005***

| | |
|---|---|
| TEL. NO.: 25740205<br>FAX: (091) 11-25-752515 | E-MAIL :<br>nawal.mehra@gmail.com. |

**EXPORTERS OF :**
**HANDLOOM/POWERLOOM FABRICS,**
**MADE-UPS AND READYMADE GARMENTS**

**अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।**
**शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थो धर्म उत्तमः॥**

महा. अनु.प. 141, 25

गृहस्थ आश्रम का पालन करते हुए गृहस्थी का सर्वोत्तम कर्तव्य है कि वह किसी भी प्राणी की हत्या न करे, सच बोले, सभी प्राणियों पर दया करे, अपनी इन्द्रियों को वश में रखे, तथा अपनी उचित कमाई में से यथाशक्ति अवश्य दान करे। यही गृहस्थ आश्रम का सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

अपने पूजनीय पिता

# स्व. पंडित बाबूराम जी शर्मा

तथा

पूजनीया माता

# स्व. श्रीमती रामप्यारी जी शर्मा

की

**पावनस्मृति**

में

प्रयोजक :

## डॉ. एम. एल. शर्मा

1942, 46 एविन्यू, सैन फ्रान्सिस्को,

सी– 94116, यू. एस. ए.

॥ दिव्य-प्रेरणा ॥

देवीर्द्वारो विश्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये।
प्र प्र यज्ञं प्रणीतन।। ऋग्वेद 5.5:5

॥ भाव-गुञ्जन ॥

देवि तुम्हारा द्वार श्रेष्ठ, शुभ सुन्दर शुद्ध सुपावन।
करता वरण शरण इसकी, वह गति पाता मन भावन।।
श्रेय सुरक्षा उजियारा, लेकर आता सुख तारा।
श्रद्धा से तुम्हें निहारा, पाया श्रुति वैभव सारा।। - देवातिथि

## सुयश सौमनस्वी स्वरसरस्वती श्रीमती डॉ. कृष्णा गुप्ता जी

जन्म 1 अक्टूबर 1950 पहाड़ी धीरज दिल्ली में *विवाह 1966 में अलीगढ़ के प्रतिष्ठित परिवार मास्टर कन्हैया लाल लोहेवालों के पौत्र शिक्षाविद् डॉ. गिर्राज किशोर से * हायर सेकेन्डरी के बाद की सारी शिक्षा-इन्टरमीडियेट, बी.ए.,एम.ए., बी.एड., एम.एड. तथा पी.एच-डी. तक अपने पति के सहचर्य में प्राप्त * अलीगढ़ के श्री वार्ष्णेय कॉलिज व टीकाराम कन्या महाविद्यालय में शिक्षा प्रवक्ता एवं शिव दानसिंह कॉलेज इगलास में शिक्षा विभागाध्यक्ष, तथा विवेकानन्द कॉलेज आफ एजूकेशन अलीगढ़ की 12वर्ष तक संस्थापक प्राचार्या के दायित्वों सक्रिय * आपकी अभूतपूर्व सेवाओं के लिये जागृति अवार्ड (1901) एवं राष्ट्ररत्न अवार्ड एवं पदक तमिलनाडु के पूर्व राज्यपाल मान्य भीष्म नारायण सिंह व पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त डॉ. वी.जी. कृष्णमूर्ति के करकमलों से प्रदान किया गया। * आप शिक्षाविद् के साथ साथ सक्षम संगीतसाधिका के रूप में आजीवन क्रियाशील रहीं *अपनी विक्रम कालोनी की भजनमण्डली की संचालिका तथा 'कालोनी की रौनक' के रूप में प्रख्यात रहीं * आपका असामयिक निधन (24 नवम्बर 2014) सभी को सन्तप्त करगया।

**आपके प्रति श्रद्धा सुमन समर्पित**

कविता रानी, डॉ. भावना किशोर,
दीपिका किशोर एवं परिधि किशोर
(आत्मजा पुत्रियाँ)

डॉ. गिर्राज किशोर (पति)
पूर्व डीन. शिक्षासंकाय,
आगरा विश्वविद्यालय.

'जिज्ञासा' बी-24, विक्रम कालोनी, रामघाट मार्ग, अलीगढ़।
चलभाष- 9897179745

॥ आनन्द ज्योति ॥

गूहता गुह्यं तमो वियात विश्वमत्रिणम्।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ।। ऋग्वेद 1.86.10

॥ भाव-बोध ॥

हे देव गुहा का अन्धकार।
सब दुरित दैन्य दुःख दो निवार।
अरि दैत्य दूर होते जायें,
दो जीवन ज्योतिर्मय निखार।। देवातिथि

## स्मृतिपट पर अंकित चिरन्तन स्फूर्तिपल

अलीगढ़ में चार दशक पूर्व महर्षि दयानन्द मार्ग-उद्घाटन अवसर पर उपदेश करते हुए पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी, सभाध्यक्ष रघुवीर सहाय आर्य एवं अतिथि महात्मा देवमुनि (बायें से दायें सभी स्मृतिशेष), सभा-संचालन करते हुए पितृवर्य देवनारायण भारद्वाज तत्कालीन मन्त्री केन्द्रीय आर्य समाज अलीगढ़ (उ.प्र.)।

## कृतज्ञ प्रेरणादर्शी

**पण्डिता प्रतिभा भारद्वाज 'वासिष्ठ'**
**(एम.ए. संस्कृत, बी.एड्.)**

शिक्षिका उच्च प्राथमिक विद्यालय बेसिक शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश 'वरेण्यम' अवन्तिका (प्रथम) रामघाट मार्ग, अलीगढ़ 202001 (उ.प्र.)

**प्रतीक-**
'वरेण्यम्' एम.आई.जी. भूखण्ड सं. 45
अवन्तिका (प्रथम), रामघाट मार्ग
अलीगढ़, 202001 (उ.प्र.)

विनयावत ऋणी
**देवनारायण भारद्वाज**
सहायक कृषि निदेशक (सं. नि.)
सम्प्रति अध्यक्ष वेदमनीषा न्यास

**विरला जानन्ति गुणान् विरलाः कुर्वन्ति निर्धनस्नेहम्।**
**विरला रणेषु धीराः परदुःखेनापि दुःखिता विरलाः ॥**

समयोचित-पद्यमाला, 44. 2

संसार में बहुत कम व्यक्ति हैं, जो किसी के गुण की परख करते हैं। कोई-कोई ही निर्धन व्यक्तियों से स्नेह करता है। रणक्षेत्र अर्थात् कठिन कार्य को करने वाले विरले ही होते हैं तथा दूसरे के दुःख से दुःखी होने वाले भी बहुत कम व्यक्ति होते हैं, अर्थात् दुःखियों के दुःख दूर करना सबसे अच्छा काम है।

❀

दोआबा के गान्धी परमश्रद्धेय

# स्व. पं. मूलराज शर्मा

(स्वतन्त्रता सेनानी)

एवं

# स्व. प्रो. शादीराम जी जोशी

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

**श्री देवव्रत शर्मा, एडवोकेट**

**श्रीमती सीता शर्मा**

62, राजेन्द्र नगर, सिविल लाईन्ज़, जालन्धर शहर

**अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।**
**महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखञ्चात्यन्तमश्नुते॥**

महा. उद्यो.प. 39/57

जो व्यक्ति जीवन में परिश्रम करता रहता है, उसको लक्ष्मी की प्राप्ति तथा प्रत्येक वस्तु का लाभ एवं अच्छी-अच्छी वस्तु की प्राप्ति होती रहती है। जो व्यक्ति नित्य पुरुषार्थ करता है, वह जीवन में महान् बनता है तथा सदा सुखी रहता है।


अपने पूज्य भाई

# स्व. प्रो. राजेन्द्र जोशी

**( जिनका दुःखद निधन दिनांक 25 अप्रैल, 2002 को हुआ )**

की

**ग्याहरवीं पुण्य-तिथि पर**

एवं

# श्री राहुल देव शर्मा

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

## श्री देवव्रत शर्मा, एडवोकेट

## श्रीमती सीता शर्मा

62, राजेन्द्र नगर, सिविल लाईन्ज़, जालंधर शहर

**नहि जन्मनि ज्येष्ठत्वं ज्येष्ठत्वं गुण उच्यते।**
**गुणाद् गुणान्तरं याति पयो दधि घृतं यथा।।**

चाणक्यसारसंग्रह, 1. 44

कोई भी केवल जन्म के कारण बड़ा नहीं होता। बड़ा तो गुण के कारण होता है। गुण से गुण इसी प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं, जैसे दूध से दहीं श्रेष्ठ है तथा दही से घी श्रेष्ठ है। अर्थात् जिस प्रकार दही और घी से दूध की उत्पत्ति पहले हैं पर दूध की अपेक्षा दही और दही की अपेक्षा घी श्रेष्ठ समझा जाता है, क्योंकि उसमें गुणों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

❋


हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

**श्री बी. आर. अग्निहोत्री**

66, ईस्ट एण्ड एन्क्लेव

दिल्ली – 110092

**उत्तमैः सह संगेन को न याति समुन्नतिम्।**
**मूर्ध्ना तृणानि धार्यन्ते ग्रथितैः कुसुमैः सह॥**

चाणक्य-सार-संग्रहः, 2. 52

उत्तम पुरुषों के साथ उठने-बैठने से कौन ऐसा है जो उन्नति नहीं करता अर्थात् सभी उन्नति प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार धागे से गूंथे हुए फूलों के गुच्छे के साथ-साथ धागा भी देवताओं के शिर पर चढ़ जाता है अर्थात् महापुरुषों की संगति से साधारण पुरुष भी उन्नति प्राप्त कर लेते हैं।

❋


अपने पूज्य पिता

**स्व. श्री शिवलाल सडाना**

(निधन : 25-7-1996)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

**श्री जगदीश चन्द्र सडाना**

यूनाईटिड इञ्जिनियर्ज़ [रजिस्टर्ड]

6, मन्दिर मार्कीट, माता रानी रोड, लुधियाना

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणाः।।

चाणक्यनीतिशास्त्र, 11. 1.

दान देने की प्रवृत्ति, सबके साथ प्रेम से बोलने की आदत, धैर्यपूर्वक कार्य करना, किसी भी कार्य में अच्छाई तथा बुराई की पहचान, ये बातें व्यक्ति में स्वाभाविक होती हैं, अभ्यास करने से नहीं आती हैं।

*With best compliments from :*

*Dr. B.D. Dhawan*

**359, 15-A, Chandigarh**

जीवते यस्य जीवन्ति विप्रा मित्राणि बान्धवाः।
सफलं जीवितं तस्य आत्मार्थं को न जीवति।।

चाणक्यसार-संग्रहः, 7.14

जिस व्यक्ति के रहने पर उसके मित्र तथा भाई-बन्धु और ब्राह्मणवर्ग सुखी रहता है, अर्थात् सुख से जीवन बिताते हैं, उसका जीना ही जीना है। अपने लिए तो कोई भी जीवित रहता है। तात्पर्य है कि संसार में उसका जीवन ही सफल है जो दूसरों की यथासंभव सहायता करता है। केवल अपने लिए तो कीट-पतंगा भी कार्य करते रहते हैं।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

# सर्वश्री भुवालका जनकल्याण न्यास

'तोशहाऊस' पी-32/33
इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कोलकाता - 700 001

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।
वासितं स्याद् वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा॥

चा. नी. शा., 3. 14

जिस प्रकार किसी वन में एक अच्छे वृक्ष के फूलों की सुगन्धि से सारा वन सुगन्धित हो जाता है। उसी प्रकार किसी कुल में एक ही सुपुत्र से सम्पूर्ण कुल आनन्दित हो जाता है अर्थात् कुल में उत्पन्न एक भी अच्छा बालक सारे कुल की प्रतिष्ठा बढ़ा देता है।

# स्व. श्री रघुवरदयाल जी कपिला

तथा

# स्व. श्री रामशरणदास जी

[ निधन: 22-12-1988 ]

अपनी पूज्या माता

# स्व. श्रीमती रामप्यारी जी

की

पावनस्मृति

में

उनके बच्चों की ओर से

प्रयोजक :

**डॉ. बी. के. कपिला** [पुत्र] एवं **श्रीमती राकेश कपिला** [पुत्रवधू]

सुतैहरी रोड़, होश्यारपुर [पंजाब]

ओ३म्

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

जो सब जगत् का जीवनाधार, सर्वदुःख हर्त्ता, जगत् में व्यापक होकर सब का धारणकर्त्ता, सब जगत् का उत्पादक, सर्व सुखदाता है, उस परमात्मा के श्रेष्ठ शुद्ध स्वरूप को हम धारण करें, जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करे।

पुण्यश्लोक, प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद पितृश्री

## स्व. वैद्य श्री मुन्शीराम जी 'वनी'

एवं परमपूज्या मातृश्री

## स्व. श्रीमती सुमति देवी जी

की

पुण्यस्मृति

में

उनके प्रिय परिवार की ओर से

प्रयोजक :

**प्रो. देवदत्त शास्त्री**

अग्र नगर, मालेरकोटला-148 023 (पंजाब)

चला लक्ष्मीः चलाः प्राणाः चले जीवितमन्दिरे।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः।।

चाणक्यनीतिशास्त्र, 4. 20.

इस क्षणभंगुर संसार में धन-दौलत सब अस्थिर विनाशशील है। जीवन भी अस्थाई है। जो कुछ इकट्ठा किया जाता है, वह घर और जमीन-जायदाद सब नाशवान् हैं। हाँ, इस विनाशशील संसार में केवलमात्र धर्म ही एक ऐसी वस्तु है जो अन्त में मनुष्य का साथ देती है।

*With best compliments from :*

*Shri Surinder Mohan Soni*

**Soni Cottage, St. No. 3, Near Saint Farid School**
**P.O. Sadhu Ashram, Hoshiarpur**

**उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।**
**तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्।।**

चाणक्यनीतिशा., 7. 14

व्यक्ति जो धन कमाता है, उसकी रक्षा का एकमात्र उपाय है कि वह यथाशक्ति दान करता रहे तथा खर्च करता रहे। जिस प्रकार तालाब में पानी भर जाने से तालाब की रक्षा उसमें इकट्ठे हुए जल को निकालना है, यदि तालाब में जल भरता ही जाय और उसका निकास न हो तो तालाब टूट जाता है।

❋


हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

# श्रीमती गीता खन्ना

197, फेज़ VI, मोहाली

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

गीता, 2. 23

इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं, और इस आत्मा को आग भी नहीं जला सकती है तथा इस आत्मा को जल गीला नहीं कर सकता तथा इस आत्मा को वायु सुखा नहीं सकती है।

अपने पूज्य पिता

# स्व. श्री रामलाल जी पराशर

[ निधन: 27-5-1997 ]

की

पावनस्मृति

में समर्पित

**श्री सुदर्शन पराशर ( पुत्र ), सेवानिवृत्त डिप्टी रजिस्ट्रार,पंजाब विश्वविद्यालय,**

**अविनाश पराशर ( पुत्रवधु ), सर्वश्री प्रदीप, राजीव, विशाल ( पौत्र )**

**रेलवे मण्डी, होशियारपुर**

प्रयोजक :

**डॉ. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा**

कुलीनैः सह सम्पर्कं पण्डितैः सह मित्रताम् ।
ज्ञातिभिश्च समं मेलं कुर्वाणो न विनश्यति ॥

चाणक्यनीति, 292

जीवन में अच्छे व्यक्तियों के साथ मेलजोल रखने वाला तथा विद्वान् व्यक्तियों के साथ मित्रता रखने वाला एवं अपने सम्बन्धियों के साथ सम्बन्ध बनाये रखने वाला व्यक्ति नष्ट नहीं होता अर्थात् अवनति को प्राप्त नहीं होता।

# *Sh. Balbir Raj Sondhi*

*(1926–1993)*

*Who had lived well, laughed often and loved much, Who had gained the respect of intelligent women, men and love of children; Who never locked appreciation of earth's beauty or failed to express it; Who followed his dreams and pursued excellence in each task. He continues to inspire us......... Family, Directors & Staff*

57 glorious years.....
PKF
Trusted Since 1958

## PKF FINANCE LTD.

Corporate Office : "Balbir Tower", G. T. Road, Jalandhar–144 001
Ph.: 0181–2238611,15, Fax : 2236802
www.pkffinance.com

• FINANCE • DEPOSITS • LOCKERS • INSURANCE • FOREX • TYRES

मुच्यते बन्धनात् पुष्पं फलं वृक्षात्प्रमुच्यते।
क्लिश्यन्नपि सुतं स्नेहैः पिता पुत्रं न मुञ्चति॥
महाभा. सूक्तिसुधा, पृ. 366

समय आने पर फूल भी वृक्ष से अलग हो जाता है। इसी प्रकार फल भी वृक्ष से गिर सकता है। परन्तु पिता–माता अनेकों कष्ट सहने पर भी अपनी सन्तान को कभी नहीं छोड़ते हैं।

# स्वर्गीया श्रीमती श्यामा जी सूद

(14. 7. 1952 – 25. 12. 2011)

की पुण्य स्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

## सर्वश्री नरेश चन्द्र सूद ( पति ), शरत सूद एवं मनु सूद ( पुत्र )

ए. बी. सी. हैण्डलूम
कोतवाली बाजार, होशियारपुर।

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥

मनुष्य नानाविध शास्त्रों के वचनों को सुनकर धर्म के विषय में जानता है तथा अपनी बुरी प्रवृत्ति को छोड़ता है। शास्त्रों को सुनकर ही उसको नानाविध ज्ञान होता है जिससे वह अन्त में मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है। अत: मानव को सभी प्रकार के शास्त्र का अध्ययन तथा श्रवण करना चाहिए।

स्व. पूज्य पति

# डॉ. एस. पी. चोढा जी

की

पावन स्मृति

में

प्रयोजिका :

**श्रीमती उषा चोढा ( धर्मपत्नी )**

एफ-137, सरिता विहार, नई दिल्ली-110076

यदेव ददतः पुण्यं तदेव प्रतिगृह्यतः।
नह्येकचक्रे वर्तेत इत्येवमृषयो विदुः॥

महा. अनु. प. 121.14

इस संसार में दान देना और लेना दोनों ही कार्य उत्तम हैं। क्योंकि शास्त्र कहता है कि जीवन में दान देने वाले व्यक्ति को जितना पुण्य होता है उतना ही पुण्य उस दान को लेने वाले को भी मिलता है। वस्तुत: दाता और गृहीता दोनों एक-दूसरे का उपकार ही करते हैं। जिस प्रकार एक पहिए से कोई गाड़ी नहीं चलती ऐसे ही जब तक दान लेने वाला कोई खड़ा न हो तक तक दाता दान किसे देगा। अत: दाता के साथ-साथ उसको ग्रहण करने वाला भी कोई सत्पुरुष होना चाहिए, तभी दान सफल है।

❋

# स्व. श्री राजकृष्ण बहल

तथा

# स्व. श्री मुनीश बहल

[ जिनका निधन 13-6-1987 को हुआ ]

की

पावनस्मृति

में

प्रयोजक :

**प्रेम कृष्ण बहल**

ई-92, ग्रेटर कैलाश-I, नई दिल्ली

# एक्यूप्रेशर तथा एक्युपंचर

## प्राचीन भारतीय चिकित्सा-पद्धति

एक्यूप्रेशर एवं एक्यूपंचर प्राचीन भारतीय चिकित्सा-पद्धति है। यह प्राकृतिक चिकित्सा है, जो पहले भारत में घर-घर में प्रयुक्त की जाती थी। जहाँ तक संभव है, स्त्रियों में नाक छिदवाना, स्त्री-पुरुषों में कान छिदवाना, गुदना, गोदना आदि एक्यूप्रेशर एक्युपंचर चिकित्सा का ही भाग था जिनसे अनेक रोगों की संभावना समाप्त हो जाती थी, आज भी अनेक घुमन्तू जातियां हाथ-पैरों, पेट, पीठ, माथे आदि पर गुदना गुदवाती हैं। वहां सुन्दरता की दृष्टि से ओ३म्, हरि या किसी का नाम लिखवा देती है। कुछ नहीं तो किसी पुष्प, फल, पत्ती का चिह्न ही बनवा लेती है। भारत की चिकित्सा एक्यूप्रेशर किसी भी प्रकार से चीन जापान आदि में चली गयी और वहां पर इसे विशेष स्थान मिला। वहां इस पर ध्यान दिया गया विकसित किया गया। आज हम उसी पद्धति को चीनी चिकित्सा-पद्धति कहने लगे। आयुर्वेद में मर्मांगों का वर्णन है तथा अभ्यंग-चिकित्सा का विस्तृत वर्णन है। वह सब ज्ञान चिकित्सा से ही सम्बन्धित है। डॉ. आशिमा चटर्जी के अनुसार एक्युपंक्चर का आविष्कार भारत में ही हुआ। चीन की एक राष्ट्रीय गोष्ठी में डॉ. वी.के.सिंह ने भी यह बताया कि एक्युपंचर भारतीय चिकित्सा पद्धति है। विदेशी से आक्रमण से गुरुकुल व आश्रमों को नष्ट करना, संग्रहालयों को आग के हवाले करना, भारत पर होने वाले आक्रमणों से हमारे ज्ञान को अत्यधिक हानि हुई। इससे यह ज्ञान यहाँ से लुप्त प्राय हो गया, लुटेरों ने हमारे संग्रहालय जला दिये। पाण्डुलिपियां, जो भोजपत्र, ताड़पत्र, चीड़पत्रों पर उल्लिखित थीं उठाकर ले गये, इससे यह पद्धति यहां पल्लवित नहीं हो पायी। आज विदेशों में इस पद्धति के अनेक चिकित्सक हैं। रक्तवाहिनी एवं स्नायुतंत्र की नाड़ियों के अन्तिम सिरा हाथ-पैरों में त्वचा के नीचे होते हैं। हाथ-पैर की नसों का सम्बन्ध इस प्रकार पूरे शरीर के अंगों से हो जाता है। जब इनके सिरों को दबाया जाता है तब उन संबन्धित अंगों पर इसका प्रभाव अवश्य पड़ता है हमारे शरीर में स्नायु-संस्थान का जाल फैला हुआ है। रेफ्लेक्सन सेन्टर या रेस्पोंन्स सेन्टर पर दबाब देने से उस अंग में प्रतिक्रिया होनी आरम्भ हो जाती है। एक्यूप्रेशर सस्ती, सुलभ व खर्चा नहीं के लगभग होने से अत्यधिक अच्छी है। इसको आसानी से किया जा सकता है। उदर रोम, ज़िगर तिल्ली, गुर्दे के रोग, श्वास संस्थान, नेत्र त्वचा, नासिक व कर्ण रोग, पुराना दर्द सर्वाइकल, जोड़, संधिशूल, मोटापा रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होना, नकसीर, आधा शीशी, अनिद्रा आदि अनेक रोगों में यह चिकित्सा-पद्धति चमत्कारी प्रभाव दिखाती है। यदि इस चिकित्सा के अनुसार हाथ-पैरों के बिन्दुओं पर नियमित प्रेशर होते रहें, तो अनेक रोगों को होने से बचाया जा सकता है। पहले व्यक्ति पूरे बदन पर तेल आदि की मालिश किया करते थे। नंगे पैर चलते थे। खड़ाऊं पहना करते थे। इससे अनेक रोग होते ही नहीं थे।

इस चिकित्सा पद्धति के लिए हमारे देश में भी विकास की आवश्यकता है। जितने भी ग्रेजुएट, पोस्ट ग्रेजुएट चिकित्सा की पद्धति है इस ज्ञान को भी उससे सम्बद्ध करना चाहिए, जिससे प्रत्येक को इस सस्ती सुलभ उपयोगी पद्धति से लाभ हो सके।

सौजन्य से :- अरविन्द कुमार मेहता ( आर्य )
आर्य भवन ट्रस्ट,
60/4, विभवनगर, आगरा-282001 ( उ. प्र. ), फोन : 9837362000
॥ सामवेद ॥ ॥ अथर्ववेद ॥

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर ( पंजाब ) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ ( पंजाब ) से २८-६-२०१५ को प्रकाशित।